प्रथम अध्याय

स्त्री विमर्श: अवधारणा, स्वरूप और वैश्विक स्तर पर स्त्री चेतना का उदय एवं नारीवादी आन्दोलन

1.1- स्त्रीविमर्श: अवधारणा एवं स्वरुप

1.2- स्त्री चेतना: उदय एवं विकास

1.3- नारीवादी आन्दोलन: पाश्चात्य परिप्रेक्ष्य

1.4- नारीवादी आन्दोलन: भारतीय परिप्रेक्ष्य

1.5- स्त्री लेखन

स्त्री विमर्श: अवधारणा, स्वरूप और वैश्विक स्तर पर स्त्री चेतना का उदय एवं नारीवादी आन्दोलन

1.1- स्त्री विमर्श: अवधारणा एवं स्वरूप

पारिभाषिक तौर पर स्त्री विमर्श एक ऐसा विमर्श है जिसमें स्त्रियों के लिए एक समान राजनैतिक, शैक्षिक, आर्थिक, सामाजिक अधिकारों की बात की जाती है। भारत में स्त्री विमर्श या नारीवादी आंदोलनों तथा इससे जुड़े मुद्दों को पश्चिम से आयातित विचारधारा के रूप में देखा जाता है, परंतु भारत में भी स्त्रियों की दोयम स्थिति के विरुद्ध स्त्री-मुक्ति के प्रश्नों को उठाने का एक लम्बा इतिहास रहा है। हाल के दशकों में हाशिए के विमर्श या अस्मितामूलक विमर्शों के जरिए स्त्री विमर्श पर काफी कुछ लिखा जा चुका है तथा लिखा भी जा रहा है जो इस विमर्श के प्रति लोगों की लगातार बढ़ती जागरूकता का ही परिणाम है। स्त्रियों की सामाजिक दोयम स्थिति, इस स्थिति के मूल कारणों तथा इस स्थिति से मुक्ति के संबंध में वैश्विक स्तर पर विभिन्न प्रयास हुए हैं। इस दोयम स्थिति के मूल कारणों का विश्लेषण करने पर स्त्री-प्रश्नों की एक क्रमबद्ध शृंखला का निर्माण हो जाता है जिनके उत्तरों की सहायता से ही स्त्री-मुक्ति के पथ की ओर अग्रसर हुआ जा सकता है। विश्व की किसी भी संस्कृति के इतिहास के विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी भी सामाजिक संरचना में, समाज में, परिवार में स्त्रियों की स्थिति हमेशा दोयम दर्जे की ही रही है और इस दोयम स्थिति को धार्मिक रूप से सदैव स्वीकृति मिली है। धर्म, नीति शास्त्रों द्वारा स्त्रियों को कभी पूजन योग्य देवी घोषित किया जाता है तो कभी इस देवी रूपा स्त्री के सदैव पराधीन रहने की वकालत की जाती है। भारतीय धर्मशास्त्र की आधारशिला मानी जाने वाली 'मनुस्मृति' में जहाँ 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता'[1] में नारी को देवी समतुल्य बताया जाता है वहीं 'न स्त्री स्वातान्त्रयम अहर्ति'[2] द्वारा स्त्रियों को ताउम्र पिता, भाई, पति या पुत्र के ऊपर निर्भर रहने का निर्देश दिया जाता है। एक विवाहिता के लिए माना जाता है कि यदि उसका पति सदाचारहीन, कामी या

विद्या आदि गुणों से हीन भी हो तो भी वह पूज्य है।[3] स्त्री विमर्श मूलतः स्त्री और पुरुष के बीच की इसी असमानता पर आधारित पितृसत्तात्मक व्यवस्था की दमनकारी परिपाटी का विरोध करता है। स्त्री विमर्श, उन सभी कारणों की जांच-पड़ताल करने की कोशिश करता है जिनके आधार पर पितृसत्तात्मक व्यवस्था क्रमशः दृढ़ होती गई। मार्क्सवादी विचारक फ्रेडरिक एंगल्स के अनुसार निजी संपत्ति की अवधारणा से ही मातृसत्ता का विनाश हुआ। "मातृसत्ता का विनाश नारी जाति की विश्व ऐतिहासिक महत्व की पराजय थी। अब घर के अंदर भी पुरुष ने अपना आधिपत्य जमा लिया। नारी पदच्युत कर दी गई। वह जकड़ दी गई। वह पुरुष की वासना की दासी, संतान उत्पन्न करने का एक यंत्र मात्र बन कर रह गई। "[4] गर्डा लर्नर मातृसत्ता की अवधारणा में विश्वास नहीं रखतीं। अपनी पुस्तक 'क्रीऐशन ऑफ पैट्रीआर्की' में वह लिखती हैं, "I am defining matriarchy as the mirror image of patriarchy. Using that definition, I would conclude that no matriarchal society has ever existed."[5] उनका मानना है कि मातृसत्ता, मातृस्थानिकता तथा मातृवंशीयता अलग-अलग अवधारणाएं हैं। मातृस्थानिक तथा मातृवंशीय समाजों में स्त्री और पुरुष बराबर माने जाते हैं, परंतु ऐसे समाज धीरे-धीरे लुप्त होते जा रहे हैं। पूर्वोत्तर भारत के मेघालय राज्य की 'गारो, 'खासी' तथा 'जयंतिया' तीन मातृवंशीय जनजातियों में स्त्रियों की स्थिति अपेक्षाकृत बेहतर है। इन परिवारों में संपत्ति का उत्तराधिकार घर की सबसे छोटी बेटी को मिलता है। विवाह के पश्चात पुरुष महिला के साथ उसके घर पर रहते हैं। नवजात शिशुओं को उनकी माँ का उपनाम दिया जाता है। इन जनजातियों में पुरुष, महिलाओं के स्वामी होने की अपेक्षा उनके सहयोगी होने की भूमिका का निर्वहन करते हैं। स्त्री विमर्श के विशेषज्ञों ने सामाजिक संरचना को समझने के लिए इतिहास के साथ-साथ ही मानवशास्त्र तथा समाजशास्त्र की भी सहायता ली है जिससे यह स्पष्ट हो सके कि स्त्रियों की पराधीनता की मूल जड़ उनकी शारीरिक एवं मानसिक संरचना नहीं अपितु थोपी गई मान्यताएं एवं रूढ़ियाँ हैं।

स्त्रीविमर्श को समझने के लिए इस विमर्श को दृढ़ बनाने वाले कुछ सम्प्रदायों तथा उनके दर्शन का ज्ञान अनिवार्य है।

उदारवादी स्त्री विमर्श (लिबरल फेमेनिज़्म)-

उदारवादी स्त्रीविमर्श के अंतर्गत स्त्री-पुरुषों को समान जीवनाधिकार, वैयक्तिक स्वतंत्रता तथा समान न्याय की सुविधा देने का आह्वान किया जाता है। वैश्विक पटल पर शुरूआती दौर में स्त्रियों की स्थिति को लेकर हुए विमर्श उदारवादी या लिबरल फेमेनिज़्म के अंतर्गत आते हैं। "उदारवादी नारीवाद, नारीवाद की सभी उपधाराओं व रूपों को आंशिक स्तर पर समेटने वाली वह वृहद धारा है जो पूरे संसार में विस्तृत है। दूसरी उपधाराओं की तुलना में इसमें शामिल पुरुषों की संख्या भी ज्यादा है। इनके समर्थक समाज-सुधार में विश्वास रखते हैं। ये चाहते हैं कि स्त्री व पुरुष के बीच लिंग-विवेचन न हो, उन्हें चयन व योग्यता के अनुसार अवसर दिया जाए।"[6] यूरोपीय नवजागरण के दौरान रूसो, जॉन स्टुअर्ट मिल तथा लॉक इत्यादि चिंतकों द्वारा नारी-जागरण को समाज के विकास के लिए आवश्यक माना गया। जॉन स्टुअर्ट मिल ने स्त्री-पुरुष की समानता का पक्ष लेते हुए कहा कि दोनों को ही विकास के समान अवसर उपलब्ध कराने चाहिए। मिल स्त्रियों की पुरुषों पर निर्भरता को दासता की आदिम अवस्था का ही एक रूप मानते हैं।[7] महिलाओं की सुसुप्त चेतना की ओर इंगित करते हुए मिल लिखते हैं कि, "जब तक सामाजिक प्रथाएं महिलाओं को अपनी मौलिकता विकसित करने की उतनी आज़ादी नहीं देतीं जितनी की पुरुषों को प्राप्त है, तब तक ऐसा ही रहेगा। "[8] ओलिव श्रेनर की पुस्तक 'विमेन एण्ड लेबर' (1911), वर्जीनिया वूल्फ़ की पुस्तक 'ए रूम ऑफ वन्स ओन' (1929) तथा वेरा ब्रिटेन की पुस्तक 'व्हाई फेमेनिज़्म लिव्स' (1927) इत्यादि के माध्यम से उदारवादी स्त्री विमर्श का पथ प्रशस्त हुआ। सिमोन दी बाउवा द्वारा रचित 'द सेकंड सेक्स' (1949) के माध्यम से स्त्री प्रश्नों पर वैश्विक स्तर पर बहस शुरू हुई। सिमोन स्त्रियों को जीवविज्ञानी, मनोविश्लेषणवादी तथा ऐतिहासिक दृष्टियों से देखने की अपील करते हुए लिखती हैं कि , "इस प्रकार ही हम स्त्री सत्य से वाकिफ़ हो पाएंगे और यह समझ पाएंगे कि किस प्रकार वह

'अन्य' की श्रेणी में आती है।[9] अमेरिका के उदारवादी नारी संगठन 'नैशनल ऑर्गेनाईजेशन ऑफ वुमन' द्वारा वहाँ के संविधान में विभिन्न स्त्रीपक्षीय संशोधनों की माँग की गई तथा लैंगिक भेद के बिना सभी नागरिकों के लिए समान वेतन, आर्थिक-सुरक्षा तथा न्यायिक सुविधाएँ लागू करने के लिए संगठन ने ऐतिहासिक संघर्ष किया। भारत में नवजागरण आंदोलन द्वारा स्त्रियों की स्थिति को सुधारने के लिए किए गए प्रयास उदारवादी स्त्री विमर्श से ही प्रभावित रहे हैं। भारतीय संविधान लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं करता। अतः उदारवादी नारीवाद की मान्यताओं को आत्मसात करता है। उदारवादी स्त्री विमर्श क्रांतिकारी होने की अपेक्षा सुधारवादी है। प्रमिला के. पी. के अनुसार उदारवादी नारीवाद में चयन का महत्व है। उदारवादी स्त्री विमर्श द्वारा स्त्री के पक्ष में प्रजननाधिकार, गर्भपात की स्वाधीनता, यौन उत्पीड़न से बचाव, शिक्षा का अधिकार, काम करने के अवसर, स्वास्थ्य रक्षा, घरेलू उत्पीड़न से रक्षा आदि स्त्री प्रश्नों को उठाया गया। उदारवादी स्त्री विमर्श के माध्यम से न्याय संहिता, कोड तथा सरकारी कागजातों में स्त्री भाषा के प्रयोग का आह्वान किया जाता है।

उग्र स्त्री विमर्श (रेडिकल फेमेनिज़्म)-

प्रमिला के. पी. के अनुसार "उन्नीस सौ बावन में सिमोन दी बउवा की कृति 'द सेकंड सेक्स' के अमेरिका में प्रचारित होने के बाद से स्त्री मुक्ति आंदोलन की एक शाखा 'रेडिकल' नाम से विकसित हुई।"[10] उग्रवादी स्त्री विमर्श का मानना है कि पितृसत्ता पुरुषाधिपत्य के साथ ही वर्चस्ववाद को भी बनाए रखती है अतः पितृसत्ता से मुक्ति के माध्यम से ही समाज शोषण से मुक्त हो सकता है। इसी मान्यता के आधार पर साहित्यकार आँद्रिया डवोर्किन, मॉनेक वीटिङ, फिलिस चेसलर तथा समाजकर्मी मेरी डाली, जिल जॉनसन, रौबिन मॉर्गन इत्यादि द्वारा विश्व का प्रशासनिक संचालन स्त्रियों को देने की माँग की गई। उग्रवादी स्त्री विमर्श के अनुसार परंपरागत परिवार का स्वरूप पितृसत्तात्मक है और इसमें स्त्रियों को चयन की कोई सुविधा प्राप्त नहीं होती। केट मिलेट की पुस्तक 'सेक्सुअल पॉलिटिक्स' (1970), एलेन पेक की पुस्तक 'द बेबी ट्रैप' (1971), कातरिन पेरूट्स

की पुस्तक 'मेरिज इज हेल' (1972) तथा जिल जॉनसन की पुस्तक 'लेस्बियन नेशन' (1973) इत्यादि पुस्तकें उग्रवादी स्त्रीविमर्श की मान्यताओं को स्थापित करती हैं। उग्रवादी स्त्री विमर्श द्वारा औपचारिक तथा अनौपचारिक कार्यक्षेत्रों में लिंगगत भेदभाव, स्त्री यौनिकता, परिवार में स्त्री की दोयम स्थिति , रोजगार तथा प्रजनन का अधिकार इत्यादि महत्वपूर्ण स्त्री प्रश्नों को उठाया गया है। उग्र स्त्रीवाद का सकारात्मक परिणाम यह रहा कि 1917 में 'मेडिकल टर्मिनेशन ऑफ़ प्रेगनेंसी एक्ट' पारित किया गया, जहाँ स्त्री को अपने स्वास्थ्य तथा आर्थिक स्थिति को देखते हुए गर्भ रखने या न रखने का अधिकार दिया गया। प्रमिला के. पी. लिखती हैं, "नारीवाद का पहला तर्क है कि जेन्डर अथवा लिंग-स्तर वह मूलभूत समस्या है जो सभी समाज की स्त्रियों को पतित एवं शोषित रखती है। इस दृष्टि से उग्रवादी नारीवाद लिंग-केंद्रित स्त्री पक्षीय राजनीति है। सैद्धांतिक धरातल पर यह स्त्री-अध्ययनों को अस्मितावादी और लिंगआश्रित मानता है।"[11] उग्रवादी स्त्री विमर्श अमेरिकी संविधान में स्त्रियों को समान अधिकार देने से संबंधित संशोधनों की मांग करता है। उग्रवादी नारीवादी ग्लेरिया स्टेनियम ने समलिंगी विवाह की मान्यता, औरतों के प्रजनन एवं गर्भपात के अधिकार, लिंग-परिवर्तन का अधिकार इत्यादि के लिए आवाज उठाई। उग्रवादी स्त्री विमर्श की एक शाखा 'स्त्री-समलिंगी' अथवा 'लेस्बियन' बीसवीं सदी के सातवें तथा आठवें दशक में फैली जिसे कालांतर में 'क्वीर आंदोलन' के नाम से जाना गया। इस आंदोलन में स्त्रियों के साथ मुक्तिसंघर्ष में समलिंगी, हिजड़े, लिंग-परिवर्तित आदि अल्पसंख्यक और हाशिए के लोगों को शामिल किया गया है। लिंग अधिकार संघर्ष में सभी के अधिकारों का स्थान है। शारलोट बेंच, आन्द्रे लोर्द, मेर्लिन फायर तथा शीला जेफ्री आदि स्त्रीवादी इस आंदोलन की समर्थक रही हैं। उग्रवादी स्त्री विमर्श द्वारा मध्यवर्गीय पितृसत्तात्मक समाज को 'सेक्सुअल कांसेट्रेशन कैम्प' का नाम दिया गया, जिससे मुक्ति का पहला पड़ाव आर्थिक स्वावलंबन है। उग्रवादी स्त्री विमर्श द्वारा विज्ञापन, फैशन तथा सौन्दर्य स्पर्धाओं में स्त्री को मात्र देह समझने की मानसिकता का विरोध किया जाता है तथा स्त्रियों से नैसर्गिक एवं जैविक बने रहने का आह्वान किया जाता है। 1968 में अमेरिका

के अटलांटा शहर में हुई सौन्दर्य प्रतियोगिता के विरोध में जुलूस निकाला गया। मीडिया तथा सत्ता का ध्यान तुरंत आकर्षित करने के लिए प्रदर्शनकारियों द्वारा ब्रा उतार कर फेंक दिए गए थे। अपने अतिवादी प्रदर्शनों के बावजूद अपने उद्देश्यों, आंदोलनों तथा स्त्री मुक्ति के लिए किए गए प्रयासों के कारण उग्रवादी स्त्री विमर्श का योगदान महत्वपूर्ण तथा सकारात्मक है।

समाजवादी स्त्री विमर्श (सोशलिस्ट फेमेनिज़्म)-

समाजवादी स्त्री विमर्श स्त्री के शोषण को सामाजिक संरचनाओं व ऐतिहासिक परिस्थितियों से जोड़कर देखता है तथा पितृसत्तात्मकता के साथ ही पूंजी के अंतर्संबंधों का विश्लेषण करता है। समाजवादी स्त्री विमर्श द्वारा स्त्री-जीवन के निजी एवं सार्वजनिक स्तरों की मुक्ति पर चिंतन किया गया है। समाजवादी स्त्री विमर्श का मानना है कि स्त्री शोषण का मूल मात्र पितृसत्तात्मकता नहीं है बल्कि इसके साथ कई शोषण मूलक संस्थाएं एवं जीवन-स्थितियाँ हैं जो स्त्री शोषण का मूल हैं। समाजवादी स्त्री विमर्श द्वारा पितृसत्ता तथा वर्ग भेद को एक साथ संबोधित किया जाता है तथा स्त्रियों की आर्थिक एवं सामाजिक स्वायत्तता की दिशा में प्रयास किया जाता है। अमेरिका के 'रेडिकल विमेन' तथा 'फ्रीडम सोशलिस्ट पार्टी' समाजवादी नारीवादी संगठन हैं। इनका मानना है कि यौनवाद, नस्लवाद तथा वर्गवाद का सामना करने के लिए समाजवादी स्त्री विमर्श एक प्रभावी आंदोलन है। समाजवादी स्त्री विमर्श का मानना है कि पूंजीवादी विरोधी आंदोलनों को स्त्री दृष्टि से देखने की आवश्यकता है। पूंजीवादी समाज के समस्त क्षेत्रों में स्त्रियाँ श्रम-शोषण का शिकार हैं तथा वर्चस्ववाद, वर्णवाद एवं साम्राज्यवाद पूंजीवाद का स्वभाव है। समाजवादी स्त्रीविमर्श मानता है स्त्री की स्थिति में तब तक सुधार नहीं आ सकता जब तक वह आर्थिक, पारिवारिक व सामाजिक दृष्टि से स्वावलंबी नहीं बनती। समाजवादी स्त्री विमर्श में इतिहासबोध का विशिष्ट महत्व है। अतः इसके अंतर्गत वर्ण, प्रदेश तथा लिंगगत भेदभाव को देश व प्रदेश के अनुसार भी देखा जाता है। समाजवादी स्त्री विमर्श की दृष्टि में स्त्री शोषण मूलतः श्रम शोषण है, अतः इसके अंतर्गत लिंग-भूमिकाओं तथा लिंग आधारित श्रम विभाजन को ध्वस्त करने का प्रयास किया जाता है।

मार्क्सवाद से प्रभावित समाजवादी स्त्री विमर्श स्त्रियों की आर्थिक निर्भरता तथा निष्क्रियता को स्त्री पराधीनता का मूल मानता है। फ्रेडरिक एंगल्स लिखते हैं कि, "जब तक स्त्रियों को सामाजिक उत्पादन के काम से अलग और केवल घर के कामों तक ही जो निजी काम होते हैं, सीमित रखा जाएगा, तब तक स्त्रियों का स्वतंत्रता प्राप्त करना और पुरुषों के साथ बराबरी का हक़ पाना असंभव है और असंभव ही बना रहेगा। स्त्रियों की स्वतंत्रता केवल उसी समय संभव होती है जब वे बड़े पैमाने पर उत्पादन में भाग लेने में समर्थ हो पाती हैं। "[12]

पारिस्थितिकीय स्त्री विमर्श (इकोफेमेनिज्म)-

प्रमिला के. पी. लिखती हैं, "पारिस्थितिकीय स्त्रीवाद व्यापक जैविक लोकतंत्र का भी चिंतन है, जिसमें सिद्धांत से बढ़कर आचरण का महत्व है। यह प्रकृति के सभी अवयवों के महत्व को अख्तियार करता है। इसलिए यह जीव-जंतुओं व प्रकृति-तत्वों के अंतर्संबंधों की जाँच करता है, आपसी विनिमय का विश्लेषण करता है, किसी एक पक्ष के स्वामित्व या महत्व को ठुकराता है।"[13] "इसमें प्रयुक्त 'इको' शब्द डीप इकोलॉजी माने नैसर्गिक प्रकृति विज्ञान को सूचित करता है जो सामाजिक प्रकृति से भिन्न व वैविध्यमय है। यह नैतिक, पर्यावरणमूलक तथा मनोवैज्ञानिक विशेषताओं से संपन्न भी है।"[14] पारिस्थितिकी स्त्री विमर्श पूँजीवाद के साथ ही युद्धों का भी विरोध करता है। इसके अनुसार दोनों ही अहंकारी पुरुष संस्कृति के लक्षण हैं। अमेरिकी नारीवादी स्टारहॉक तथा रोज़मेरी रॉडफोर्ड रूथर ने पारिस्थितिकीय स्त्री विमर्श से संबंधित विचार प्रस्तुत किए हैं। 'इकोफेमेनिज्म' के अंतर्गत पृथ्वी तथा स्त्री के प्रति शोषण को एक दृष्टि से देखा जाता है। पारिस्थितिकी स्त्री विमर्श के अनुसार सती प्रथा, दहेज समस्या, भ्रूण हत्या, बलात्कार इत्यादि स्त्री विरोधी होने के साथ ही प्रकृति विरोधी भी हैं। प्रकृति के सभी अवयवों के साथ नारी का संबंध है तथा पितृसत्तात्मक समाज स्त्री के साथ प्रकृति को भी दोयम स्थान पर रखता है। फ्रेंच नारीवादी फ्रेंकोइस की युबोन का नाम उल्लेखनीय पारिस्थितिकी नारीवादी सिद्धांतकारों में गिना जाता है। अमेरिकी नारीवादी सैलीमेक फैक, भारत में वंदना शिवा, सुनीता नारायण तथा केन्या में वंगारी

मथाई इत्यादि ने 'इकोफेमेनिज्म' की अवधारणा को स्पष्ट तथा मजबूत बनाने के लिए महत्वपूर्ण प्रयास किए हैं।

अश्वेत स्त्री विमर्श (ब्लैक फेमेनिज्म)-

औपनिवेशिक देशों या तीसरी दुनिया के देशों से संबंधित स्त्रीवादी महिलाओं ने 'ब्लैक फेमेनिज्म' की अवधारणा पर प्रकाश डाला है। 1973 में मारग्रेट स्लोन हंटर के नेतृत्व में न्यूयॉर्क में 'नैशनल ब्लैक फेमेनिस्ट ऑर्गेनाईजेशन' नामक अश्वेत नारीवादी संगठन की स्थापना की गई। अश्वेत नारीवाद, श्वेत नारीवाद का अनुकरण नहीं करता है बल्कि अपने लोगों की समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में नारीवाद की पुनर्व्याख्या और उसमें विस्तार करने का प्रयास करता है। अश्वेत स्त्री विमर्श के अनुसार अश्वेत स्त्रियाँ हर तरह के शोषण का सबसे ज्यादा शिकार हैं अतः इनकी समस्याओं को संबोधित किए बिना लैंगिक भेदभाव से मुक्त समाज की परिकल्पना नहीं की जा सकती। विविध संदर्भों में प्रयुक्त उत्तर-औपनिवेशिक स्त्रीवाद, अंतर्राष्ट्रीय स्त्रीवाद, तीसरी दुनिया का नारीवाद तथा दलित नारीवाद आदि अश्वेत नारीवाद से जुड़ी अवधारणाएं हैं। "अश्वेत नारीवाद का अंतर्राष्ट्रीय महत्व है। वर्णवाद के साथ यह यौन हिंसा को भी जोड़कर परखता है और श्वेत नीति के साथ पुरुषवाद को भी कटघरे में खड़ा करता है। भारतीय संदर्भ में मजदूरिनों, दलित औरतों व आदिवासी स्त्रियों की समस्याओं के प्रसंग में अश्वेत नारीवाद का वैचारिक एवं राजनीतिक मेल देखा जा सकता है। यहाँ पर वर्ण एवं नस्लवाद की जगह जातिवाद एवं सांप्रदायिकता का आतंक अधिक दिखाई देता है।"[15]

इस प्रकार स्त्री विमर्श को चाहे जितने ही भागों में वर्गीकृत किया जाए परंतु सभी का उद्देश्य स्त्रियों की दोयम स्थिति से मुक्ति तथा उसे मानवीय रूप में प्रतिष्ठित करना है। स्त्रीविमर्श के मूल में अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष का आह्वान है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था का पर्त दर पर्त विश्लेषण करते हुए 'स्त्रीविमर्श' स्त्री की दोयम सामाजिक स्थिति के विरुद्ध अपनी आवाज बुलंद करता है तथा स्त्री की

एक स्वतंत्र पहचान का पक्षधर है। स्त्रीविमर्श किसी भी लिंग विशेष के वर्चस्ववाद का विरोध करता हुआ लिंगों की परस्पर समानता का आह्वान करता है।

1.2- स्त्री चेतना: उदय एवं विकास

चेतना का शाब्दिक अर्थ ज्ञानमूलक मनोवृत्ति, बुद्धि तथा समझ होता है। चेतना अर्थात बोध करने की वह वृत्ति जिसके द्वारा प्राणी अपनी आवश्यकताओं तथा परिस्थितियों के अनुसार अनेक प्रकार की अनुभूतियों को व्यक्त करने में सक्षम हो पाते हैं। रोहिणी अग्रवाल अपने लेख 'आकाश चाहने वाली लड़की के सवाल' में 'चेतना' की व्याख्या करते हुए लिखती हैं, "चेतना प्रतिक्रियात्मक होती ही नहीं। आइसबर्ग की तरह इसका अधिकांश, गहन चिंतन और विश्लेषण में छिपा होता है। सतह पर नोक के रूप में सिर्फ परिवर्तनकामी सुधार का स्वप्न उभरता है जो परस्पर समन्वय और सामंजस्य के दायरे में फलीभूत होना चाहता है। बेशक चेतना, आक्रोश को जन्म देती है, लेकिन हर आक्रोश चेतना का वाहक नहीं होता इसलिए यदि आक्रोश, क्षोभ, प्रतिशोध, हिंसा या घृणा के रूप में व्यक्त होता है तो इसका अर्थ है चेतना निजता के घेरे से उठ कर मानव मात्र तक प्रसारित नहीं हो पाई है। चेतना की सारी जद्दोजहद मानवीय अस्मिता के उत्कर्ष के लिए है, इसलिए नकारात्मक परिणामों और यथास्थितिवाद के पोषण की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। "[16]

स्त्री विमर्श अपनी अवधारणा में यह पूरी तरह से स्पष्ट करता है कि विश्व की किसी भी संस्कृति में स्त्री-शोषण तथा उत्पीड़न की परंपरा लगभग एक सी है। इस शोषण, उत्पीड़न के विरुद्ध स्त्री-मुक्ति के स्वप्न संजोना 'स्त्री चेतना' का ही परिणाम है। स्त्री की शोषित स्थिति को विभिन्न विचारकों तथा सुधारकों द्वारा मानवीय अधिकारों का हनन माना गया। एक आदर्श समाज की स्थापना के लिए स्त्री तथा पुरुष दोनों को ही विकास के समान अवसर उपलब्ध कराने चाहिए। इस समानता के लिए वैश्विक स्तर पर पुरुषों द्वारा भी प्रयास किए गए जिसमें फ्रांसिसी विचारक 'जाँ आन्तुआ कोंदोसे (1743-94), जे. एस. मिल, राजा राममोहन राय तथा ईश्वर चंद विद्यासागर इत्यादि प्रमुख हैं।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर घटी निम्नांकित चार घटनाओं ने व्यापक स्तर पर स्त्री चेतना के प्रसार का कार्य किया-

- 1789 की फ्रांसीसी क्रांति जिसने राजतंत्र तथा साम्राज्यवाद से मुक्ति की माँग करते हुए स्वतंत्रता, समानता तथा बंधुत्व का आह्वान किया।
- 19वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में भारत में नवजागरण की लहर के दौरान राजा राममोहन रॉय के अथक संघर्ष के पश्चात 1829 में लॉर्ड बेन्टिक द्वारा 'सती प्रथा निर्मूलन' ऐक्ट पारित किया गया।
- 1848 में न्यूयॉर्क में स्त्री दासत्व को चुनौती देते हुए एलिज़ाबेथ कैंडी स्टेटन, लुक्रेसिया कफिन मोर इत्यादि के नेतृत्व में नारी स्वतंत्रता का घोषणा पत्र जारी किया गया।
- 1867 में प्रसिद्ध अंग्रेज दार्शनिक, विचारक जे. एस. मिल द्वारा ब्रिटिश पार्लियामेंट में स्त्री मताधिकार का प्रस्ताव रखा गया।

इन प्रयासों के साथ ही महिलाओं के हाथ में लेखनी का आना स्त्री चेतना के प्रसार का मूल कारण बना।

स्त्री के उत्पीड़न तथा इस उत्पीड़न से मुक्ति के लिए स्त्रियों में जागृत चेतना का इतिहास लगभग एक सा ही है, परंतु विश्व के अलग-अलग देशों में इस चेतना को कहीं जल्दी तो कहीं थोड़ी देर से अनुभव किया गया। विश्व की तमाम संस्कृतियों में भिन्नता के कारण स्त्री चेतना के स्वरूप में भी देश तथा कालखंड के आधार पर भिन्नता रही है।

ऐतिहासिक दृष्टि से विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट होता है कि फ्रांसिसी क्रांति के दौरान स्त्रियों ने भी विभिन्न राजनैतिक कारवाइयों में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया था। यही वह समय था जब 'विमेंस रिवोल्युशनरी क्लब्स' का गठन शुरू हुआ था जो आधुनिक विश्व इतिहास के प्रथम संगठन माने जाते हैं। 'ओलिम्पी दी गूजे'(1748-93) द्वारा तैयार 'स्त्री और स्त्री-नागरिक के अधिकारों की घोषणा' को 1791 में राष्ट्रीय असेम्बली के समक्ष प्रस्तुत किया गया था। इस महत्वपूर्ण दस्तावेज

की स्थापनाओं की विस्तृत व्याख्या करती हुई 'मेरी वोल्सटनक्राफ्ट' की पुस्तक 'विंडीकेशन ऑफ राइट्स ऑफ विमेन' से प्रारंभिक नारीवादी आंदोलनों की रूपरेखा को समझा जा सकता है। इस युग की परिवर्तनकारी क्रांति द्वारा स्त्रियों की क़ानूनी स्थिति में महत्वपूर्ण सुधार किए गए यथा 1791 के एक कानून द्वारा स्त्री-शिक्षा का प्रावधान, 1792 में स्त्रियों को दिए गए विभिन्न नागरिक अधिकार तथा 1794 में स्त्रियों के लिए तलाक की प्रक्रिया को आसान बनाना इत्यादि। " 'थर्मीडोरियन प्रतिक्रिया' के दौरान स्त्री आंदोलन की ये उपलब्धियाँ एक बार फिर छिन गईं। 1804 के नेपोलियन कोड और अन्य यूरोपीय देशों की ऐसी ही बुर्जुआ नागरिक संहिताओं ने एक बार फिर स्त्रियों के नागरिक अधिकारों को अति सीमित कर दिया तथा परिवार, शादी, तलाक, अभिभावकत्व और संपत्ति के अधिकारों के मामलों में उन्हें एक बार फिर वैधिक तौर पर पूरी तरह पुरुषों के अधीन कर दिया।"[17] फ्रांसिसी दार्शनिक और प्रत्यक्षवाद के प्रणेता 'ओग्युस्त कोम्त' ने अपने समाजशास्त्रीय विश्लेषण द्वारा स्त्रियों की पुरुषों के ऊपर निर्भरता का समर्थन किया। ऐसे समय में संत सीमोन, रॉबर्ट ओवन तथा चार्ल्स फूरिए द्वारा स्त्री की सामाजिक दोयम स्थिति को विधि-सम्मत बताने वाले सिद्धांतों का तर्कपूर्ण खंडन किया गया। "चार्ल्स फूरिए की तो यह मान्यता थी कि किसी भी समाज में आजादी का एक बुनियादी पैमाना यह है कि उस समाज-विशेष में स्त्रियाँ किस हद तक आजाद हैं।"[18] यही वह समय भी था जब फ्रांसिसी कथा साहित्य के माध्यम से स्त्रियों की पराधीनता का पुरजोर विरोध किया जा रहा था।

ब्रिटेन तथा अमेरिका में भी स्त्री-मताधिकार आन्दोलन शुरू हो चुके थे। सार्वजानिक गतिविधियों में स्त्रियों द्वारा बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया जा रहा था। उदाहरणस्वरुप 1830 के दशक में अमेरिका में अश्वेत दासों की मुक्ति का संघर्ष, ब्रिटेन के ऐतिहासिक चार्टिस्ट आंदोलन तथा अनाज कानूनों के उन्मूलन के संघर्ष को लिया सकता है जिसमें स्त्रियों ने सक्रिय रूप से अपनी सहभागिता दर्ज की। इन गतिविधियों के परिणाम स्वरूप 1848 में फ्रांस में फिर से नारी क्लबों का गठन शुरू हुआ। जर्मनी और आस्ट्रिया में भी स्त्री यूनियनों के गठन की शुरुआत हुई। जुलाई 1848 में न्यूयॉर्क में

एलिज़ाबेथ कैंडी स्टेटन तथा लुक्रेसिया कफिन मोर के नेतृत्व में 'प्रथम अधिकार कांग्रेस' के आयोजन में नारी स्वतंत्रता का घोषणा पत्र जारी किया गया जिसमें पूर्ण क़ानूनी समानता, पूर्णतः समान शैक्षिक और व्यवसायिक अवसर, समान वेतन, मजदूरी कमाने के अधिकार तथा वोट देने के अधिकार की मांग को उठाया गया। इस समय हो रहे नारीवादी आंदोलनों पर मार्क्सवादी दृष्टि का भी प्रभाव पड़ा। मार्क्स और एंगल्स द्वारा प्रतिपादित 'वैज्ञानिक समाजवाद' की विचारधारा द्वारा स्त्री की पराधीनता तथा उसकी दोयम स्थिति के मूल कारणों को समझने का प्रयास किया गया तथा इस संदर्भ में समाधान भी प्रस्तुत किए गए। 19वीं शताब्दी में बेबेल द्वारा मार्क्सवादी दृष्टि के आधार पर लिखी गई पुस्तक 'नारी और समाजवाद'(1879) का प्रकाशन हुआ। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक आते-आते फ़्रांस, जर्मनी, ब्रिटेन इत्यादि में विभिन्न नारीवादी आंदोलनों ने जोर पकड़ा। 1847 में ब्रिटेन द्वारा स्त्रियों के लिए 10 घंटे का कार्यदिवस निर्धारित किए जाने को मार्क्स-एंगल्स द्वारा मजदूर वर्ग की एक महान विजय घोषित किया गया। इस समय जर्मनी की 'जनरल वीमेंस यूनियन'(1865) स्त्रियों की मुख्य यूनियन में से गिनी जाती थी। यह सभी संगठन बेहतर स्त्री शिक्षा तथा स्त्री-श्रम पर लगी पाबंदियों के विरोध में कार्य कर रहे थे। इन यूनियनों के संगठित प्रयासों के परिणामस्वरुप 1860 तक ब्रिटेन में महिलाओं ने शिक्षण के अतिरिक्त अन्य पेशों के भी अधिकार प्राप्त कर लिए थे। 1858 में सीमित आधारों पर महिलाओं को तलाक लेने का भी अधिकार भी प्राप्त हो चुका था। 1860 तक वैश्विक स्तर पर विभिन्न नारीवादी आंदोलनों का मुख्य उद्देश्य मताधिकार हासिल करने पर केन्द्रित हो गया था। अमेरिका में 1869 तक दो स्त्री मताधिकार संगठनों का गठन हुआ तथा 1882 में 'फ़्रांसिसी स्त्री अधिकार लीग' का गठन किया गया।

1.3- नारीवादी आंदोलन: पाश्चात्य परिप्रेक्ष्य

फ़्रांस में नारीवादी आंदोलन:

पश्चिम में नारीवादी चेतना के बीज फ़्रांस की ऐतिहासिक क्रांति के दौरान ही पड़ चुके थे। फ़्रांस की क्रांति का समय वह था, जब आम जनता ने राजशाही तथा धर्म के अनाचार के विरुद्ध विद्रोह शुरू

किया। फ्रांसिसी क्रांति का मूल मंत्र स्वतंत्रता, समानता तथा बंधुत्व था। इस क्रांति में स्त्रियों ने भी भाग लिया था। स्त्रियों के नागरिक अधिकारों के प्रति जागरूकता के प्रसार के लिए मेरी वोल्सटनक्राफ्ट ने 'विंडीकेशन ऑफ राइट्स ऑफ विमेन' लिखी। पश्चिमी स्त्रीविमर्श तथा नारीवादी आंदोलनों का नेतृत्व शुरूआती दौर से ही महिलाओं के हाथ में था। फ्रांस की ऐतिहासिक क्रांति के समय स्त्रियों ने घर की चारदीवारी के भीतर अपनी पारंपरिक भूमिका से हटकर उस समय के राजनैतिक संघर्ष में सक्रिय रूप से भाग लिया था। 5 अक्टूबर 1789 में फ्रांस की गरीब तबके की महिलाओं ने महिला आर्थिक अधिकारों की मांग करते हुए पेरिस के बाजार से सिटी हॉल तक जुलूस निकाला। इन महिलाओं की मांग थी कि राजा उनकी आर्थिक समस्याओं की तरफ ध्यान दे तथा प्रशासनिक कार्यों को पेरिस से चलाया जाए। मांगों पर कोई आश्वासन न पाकर लगभग 7000 गरीब तथा पिछले वर्ग की महिलाएं शाही महल में घुस गईं। पोलाइन लोऔन, क्लेयर लांकोबे तथा थेरीओजीन डी मेरी कोर्ट जैसी महिलाएं, महिलाओं के हथियार उठाने तथा उनकी स्वतंत्र महिला ब्रिगेड बनाने के पक्ष में थीं। इन महिलाओं ने क्रांतिकारी संगठन 'सोसायटी फार रिवोल्युशनरी रिपब्लिकन विमेन' की स्थापना की। इस संगठन का मुख्य उद्देश्य अनाज की कालाबाजारी रोकना, मँहगाई पर नियंत्रण रखना तथा महिलाओं के लिए समान नागरिक अधिकार की मांग करना था। कालांतर में यह आन्दोलन असफल हुआ। 1790 में क्लौड देंसार्ट ने 'फ्रेटनल सोसायटी ऑफ द सेक्सेज' की स्थापना की। प्रसिद्ध फ्रांसिसी नाटककार, नारीवादी लेखक तथा राजनीतिक कार्यकर्त्ता 'ओलम्पी द गूजे' ने 1791 में महारानी के नाम 'डिक्लेरेशन ऑफ़ राइट्स ऑफ़ विमेन एंड फीमेल सिटिजन' शीर्षक से पत्र छापा जिसमें महिलाओं के नागरिक अधिकारों को सुनिश्चित करने की अपील की गई थी। इस घोषणा पत्र में ओलम्पी द गूजे ने लिखा, "महिलाएं स्वतंत्र रूप से जन्मी हैं और उनके अधिकार पुरुष अधिकारों के समान हैं... कानून सामान्य इच्छा की अभिव्यक्ति होना चाहिए, सभी नागरिकों, पुरुष हों या स्त्री, की इसे बनाने में हिस्सेदारी होनी चाहिए..., महिलाओं को फाँसी के तख्ते पर जाने का अधिकार है तो उसे संसद में भी जाने का

अधिकार होना चाहिए।"[19] अनुपमा रॉय अपने आलेख "पश्चिम में नारी-आंदोलन का उदय: संदर्भ और मुद्दे' में लिखती हैं, "1793 में महिलाओं के राजनीतिक क्लबों को दबाया गया, महिलाओं की राजनीतिक हिस्सेदारी का विरोध किया गया और कानून में नेपोलियन की संहिता लागू कर दी गई, जिसके तहत महिलाओं को परिवार के पुरुषों के मातहत रखा गया।"[20] 1848 में फ़्रांस की अंतरिम सरकार द्वारा एक निश्चित आयु के बाद पुरुषों को मताधिकार की घोषणा से फ़्रांस में स्त्रियों के समान नागरिक अधिकारों की प्राप्ति के लिए प्रयासरत महिला संगठनों को धक्का लगा।

1870 में फ्रांस के पुरुषों को सार्वभौमिक मताधिकार की घोषणा के साथ ही फ्रांस की महिलाओं ने मताधिकार के लिए संघर्ष शुरू कर दिया। "मैडम बारबराज ने कहा कि, जब संविधान द्वारा व्यवस्था दी गई है कि सभी फ़्रांसवादियों को मताधिकार प्राप्त है। तब इसके मुताबिक महिलाएं कानूनी रूप से वोट की हकदार हैं। जबकि कोर्ट ने कहा कि सभी फ़्रांसवादियों में महिलाएं शामिल नहीं हैं।"[21] नेशनल असेम्बली द्वारा 22 जुलाई 1848 को महिलाओं की राजनीति में भागेदारी पर पूर्णतः प्रतिबंध लगा दिया गया। इन सब विरोधों के बावजूद 'जैनी दिरो' ने अपने प्रकाशन 'विमेंस ओपीनियन' द्वारा महिला अधिकारों के लिए अपने संघर्ष को जारी रखा। अप्रैल 1871 में पेरिस में कम्युनिज्म शासन के दौरान एलिजाबेथ दिमित्रिफ्त तथा नाथाली लीमेल ने लिंग समानता, समान वेतन, महिलाओं को तलाक का अधिकार इत्यादि के लिए काम करने वाली संस्था 'विमेंस यूनियन फॉर द डिफेंस ऑफ पेरिस एंड केयर ऑफ द इन्जर्ड' की स्थापना की। 1909 में जीन एलिजाबेथ ने फ्रेंच 'यूनियन फॉर विमेंस सफ्रेज' की स्थापना की। इस प्रकार विभिन्न आरंभिक प्रयासों के फलस्वरूप 1936 में फ़्रांस के राष्ट्रपति लियोन ब्लम ने अपनी पापुलर फ्रंट की सरकार में महिलाओं को भी स्थान दिया। 1944 में फ्रांसीसी महिलाओं को पूर्ण नागरिकता का अधिकार मिला जिसमें मताधिकार भी शामिल था।

इंग्लैंड के नारीवादी आंदोलन:

इंग्लैंड में भी महिलाओं की दशा अत्यंत शोचनीय थी। वर्जीनिया वूल्फ ने अपनी पुस्तक 'ए रूम ऑफ वन्स ओन' में भी इंग्लैंड में स्त्रियों की दोयम स्थिति और पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को स्वयं की कौशल वृद्धि के लिए न के बराबर मिलने वाले अवसरों का जिक्र किया है। इंग्लैंड में एक विवाहित स्त्री का अपनी संतान पर कोई अधिकार नहीं होता था। सत्रहवीं शताब्दी में रिफार्मेशन के समय 'जेन एंगर' की पुस्तक 'प्रोटेक्शन फॉर विमेन टू डिफेंड देम अगेंस्ट द स्कैनडूलस रिपोर्ट', एमिलिया लायर का कविता संग्रह तथा लिंग समानता के लिए अन्ना ट्रैपमैन के प्रयासों द्वारा इंग्लैंड के शुरूआती दौर की स्त्री चेतना का अनुभव किया जा सकता है। "पूरी अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में संसद को एक लोकतान्त्रिक संस्था के रूप में विकसित होने देने की माँग उठी, विशेषतः कामगार, गरीब और पूंजीवादी तबके की ओर से यह माँग जोरदार तरीके से उठाई गई।"[22] इस संदर्भ में मेरी वोल्सटनक्राफ्ट ने अपनी पुस्तक 'विंडीकेशन ऑफ द राईट्स ऑफ विमेन' द्वारा सरकार में स्त्रियों के प्रतिनिधित्व का पक्ष लिया। 1866 में एमिली डेविस ने अपनी रचना 'थौट्स ऑन सम क्वेश्चन रीलेटिंग टू विमेन' द्वारा महिलाओं से संबंधित प्रश्नों पर अपने विचार व्यक्त किए। महिला अधिकारों पर चर्चा करने वाली बारबरा बोदीकोंट नारीवादी शिक्षक तथा कलाकार थीं। 1854 में उन्होंने 'ब्रीफ समरी ऑफ द लॉज़ ऑफ इंग्लैंड कन्सर्निंग विमेन' नामक पुस्तक प्रकाशित की। 1882 में विवाहित महिलाओं के संपत्ति पर अधिकार का कानून पारित होने में इस पुस्तक की महत्वपूर्ण भूमिका थी। इसी क्रम में 1857 में 'विवाहित महिला और रोजगार', 1866 में महिला मताधिकार और 1877 में अमेरिकन डायरी पुस्तकें प्रकाशित हुई। इसप्रकार इन आलेखों, पुस्तकों द्वारा जागृत स्त्री चेतना से महिला मताधिकार तथा महिलाओं के पक्ष में संपत्ति कानूनों की नींव पड़ चुकी थी। 1861 में प्रकाशित जान स्टुअर्ट मिल की पुस्तक 'सब्जेक्शन ऑफ विमेन' इन प्रयासों की कार्यसिद्धि के लिए मील का पत्थर साबित हुई। 1865 में स्थापित 'लेडीज डिसकसन सोसायटी' द्वारा सार्वजनिक मामलों में महिलाओं की सहभागिता पर विचार-विमर्श किया गया।

पहली महिला मताधिकार समिति का गठन 1865 में हुआ। जे. एस. मिल 'नेशनल सोसायटी फॉर विमेन सफ्रेज' के अध्यक्ष थे जिसका गठन 6 नवंबर 1867 में ल्याडिया बेकर द्वारा किया गया था। इसी प्रकार के अन्य संगठनों को सम्मिलित कर 1897 में मिलीसेंट फौसेट के नेतृत्व में 'नेशनल यूनियन ऑफ विमेंस सफ्रेज सोसायटी' का गठन किया। मड मार्च के नाम से लोकप्रिय 1907 में 'नेशनल यूनियन ऑफ विमेंस सफ्रेज सोसायटी' की महिलाओं द्वारा किया गया पहला सबसे बड़ा प्रदर्शन था जिसे मीडिया द्वारा भी काफी महत्व दिया गया। NUWSS के ही एक विभाजित हिस्से से एमेलाइन पंखस्ट ने अपनी बेटियों क्रिस्टाबेल और सिल्विया के साथ मिलकर 'विमेंस सोशल एंड पोलिटिकल यूनियन' की स्थापना की। इस दौर में इस संगठन द्वारा अपनी आवाज को सरकार तक पँहुचाने के लिए काफी हिंसक आन्दोलन भी हुए। सरकार द्वारा महिलाओं के मताधिकार को नकारे जाने के बाद WSPU ने लगभग 300 महिलाओं का एक प्रतिनिधि दल भेजा। पुलिस से हुई झड़प में दो महिलाओं की मृत्यु भी हो गई तथा 200 महिलाओं को गिरफ्तार भी कर लिया गया। प्रथम विश्वयुद्ध तक महिलाओं के इस आंदोलन को हर तरफ से दबाया गया। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान महिलाओं ने स्वयं ही अपने विरोध प्रदर्शनों को रोक दिया। विश्व युद्ध की समाप्ति(1918) पर संसद द्वारा 'क्वालिफिकेशन ऑफ विमेन' एक्ट पारित किया गया जिसके अनुसार 30 वर्ष की गृहस्थ महिला जिसके पास विश्वविद्यालय की डिग्री हो, वह वोट देने में समर्थ थी। 1928 में जनप्रतिनिधि कानून पारित होने के बाद सभी महिलाओं को वोट देने का अधिकार मिला। इस प्रकार इंग्लैंड में महिला मताधिकार की प्राप्ति का इतिहास संघर्षमय है। "मताधिकार के लिए हुए उपरोक्त आंदोलनों के आधार पर अनुपमा रॉय इन आंदोलनों के तीन चरणों को रेखांकित करती है- पहला चरण 'रेडिकल एसोसिएशनलिज़्म' सबसे पहला और छोटा चरण है जिसमें महिलाओं ने अपने आपको कामगारों के आंदोलनों और चार्टिस्ट आंदोलन से जोड़ा, दूसरा चरण संवैधानिक सफरेजिज़्म का था जो बीसवीं सदी के आरंभ तक रहा। तीसरा चरण 'मिलिटेन्ट

सफ़रेजेट' का था जिसने एक तरफ तो अपने हिंसक स्वरूप के कारण जनता की संवेदनाओं को झकझोर दिया और दूसरी तरफ सरकार की तरफ से तीव्र दमन को आमंत्रित किया।"[23]

संयुक्त राज्य अमेरिका के नारीवादी आंदोलन:

संयुक्त राज्य अमेरिका में स्त्रीचेतना के उदयकाल को ग्रिम्के बहनों के प्रयासों द्वारा समझा जा सकता है। साराह ग्रिम्के तथा एंजलीना ग्रिम्के वेल्ड संयुक्त राज्य अमेरिका के एक उच्च, समृद्ध परिवार से संबंध रखती थीं। उनके पिता साऊथ कैरोलीना राज्य के सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश थे। ग्रिम्के बहनों ने अपने घर में भी दासों के त्रासपूर्ण जीवन को बेहद करीब से देखा था। ग्रिम्के बहनें किसी भी प्रकार के दासत्व के विरोध में थीं। दोनों बहनें दास प्रथा के विरोध के साथ ही महिला अधिकारों के पक्ष में जन जागरण का कार्य कर रही थीं। ल्युक्रेशिया कफिन मोर भी एक समाज सुधारक तथा दास प्रथा की विरोधी होने के साथ ही महिला अधिकारों की भी पुरजोर समर्थक थीं। अमेरिकी पत्रकार तथा महिला अधिकारों की समर्थक मार्ग्रेट फुल्लर की पुस्तक 'विमेन इन द नाइनटीथ सेंचुरी' को महत्वपूर्ण शुरूआती नारीवादी दस्तावेजों में से गिना जाता है। मार्ग्रेट फुल्लर ने पुरुषों के समान ही स्त्रियों की भी आत्मनिर्भरता का पक्ष लिया। अमेरिकी समाज सुधारक एलिजाबेथ कैंडी स्टेटन के नेतृत्व में 1848 में न्यूयॉर्क के सिनका फाल्स में पहला महिला अधिकार सम्मलेन आयोजित किया गया। महिला नागरिक अधिकारों का समर्थन करते हुए एलिजाबेथ ने अपने भाषण में 'डिक्लेरेशन ऑफ सेंटीमेंट्स' शीर्षक से एक आलेख पढ़ा। 1850 तथा 1852 में क्रमशः द्वितीय तथा तृतीय महिला अधिकार सम्मलेन आयोजित किए गए। लूसी स्टोन और सुजन बी एंथोनी की सलाह पर 1866 में हुई एंटी स्लेवरी सोसायटी की बैठक में 'अमेरिकी समान अधिकार संगठन' की स्थापना हुई। आपसी मतभेदों के कारण यह संगठन दो भागों में विभाजित हो गया। एलिजाबेथ कैंडी स्टेटन के अध्यक्षत्व में नेशनल विमेन सफ्रेज एसोसिएशन का गठन किया गया। जिसका मुख्य मुद्दा महिला के नागरिक अधिकारों की प्राप्ति तथा संरक्षण था। लूसी स्टोन तथा अन्य साथियों ने मिलकर 'अमेरिकन विमेन सफ्रेज एसोसिएशन' का गठन किया। इसका मुख्य

मुद्दा महिलाओं के लिए पुरुषों के समकक्ष अधिकारों तथा स्वतंत्रता की मांग थी। महिला मताधिकार पर एकमत हो कर इन दोनों संस्थाओं का फिर एक ही संस्था में विलय हो गया परंतु एलिजाबेथ कैंडी स्टेटन महिलाओं के लिए मताधिकार हासिल करने के साथ ही उनकी धार्मिक तथा सामाजिक पराधीनता से जुड़े मुद्दों को भी संबोधित करना चाहती थीं। इस मुद्दे पर लूसी तथा सुजन बी एंथोनी स्टेटन के साथ एकमत नहीं थीं। एलिजाबेथ ने अपनी पुस्तक 'महिला की बाइबिल' द्वारा स्त्रियों की धार्मिक पराधीनता के प्रश्न को उठाया तथा इसके लिए 'बाइबिल' में कुछ संशोधनों की मांग की। एलिजाबेथ द्वारा 'बाइबिल' में संशोधन की मांग को लेकर 1896 में उन्हें इस संस्था से अलग कर दिया गया। NAWSA से ही नेशनल विमेंस पार्टी का जन्म हुआ जिसके प्रयासों से 1917 में न्यूयॉर्क राज्य में महिलाओं को मताधिकार की प्राप्ति हुई। 26 अगस्त 1920 को अमेरिका के अधिकांश राज्यों द्वारा महिलाओं को मत देने का अधिकार दे दिया गया।

1.4- नारीवादी आंदोलन: भारतीय परिप्रेक्ष्य

स्वतंत्रता पूर्व के नारीवादी आन्दोलन:

भारत में नारीवादी आंदोलनों के बीज ब्रिटिशकालीन उपनिवेश के दौरान ही पड़ चुके थे। उन्नीसवीं सदी का नवजागरण काल जाति-भेद, मूर्ति-पूजा, पाखंडपूर्ण कर्मकांडों, बाल विवाह, सती प्रथा इत्यादि कुरीतियों के विरोध में विद्रोह के स्वर का काल था। अट्ठारहवीं सदी के भारत में सामाजिक-राजनैतिक दृष्टि से विभिन्न प्रकार के परिवर्तन हो रहे थे। मुग़लकालीन शासन व्यवस्था टूटती जा रही थी और आपसी फूट के कारण अलग-अलग रियासतों का निर्माण हो रहा था। नवजागरण काल के दौरान विभिन्न प्रकार के सुधारवादी आंदोलनों की नींव बंगाल में पड़ी। "कलकत्ता एक विचारोत्तेजक बौद्धिक केंद्र के रूप में उभरा। सुधारों के ज्यादातर प्रारंभिक अभियान यहीं के बुद्धजीवियों द्वारा चलाए गए। "[24] राजाराममोहन राय द्वारा 1815 में स्थापित आत्मीय सभा में स्त्रियों को शिक्षित करने का मुद्दा उठाया गया। राजाराममोहन राय के प्रयासों और ब्रिटिश शासन के प्रयासों के फलस्वरुप 1818 में बंगाल के तत्कालीन प्रांतीय गवर्नर विलियम बेंटिक ने सती

प्रथा पर प्रतिबंध लगा दिया। संपूर्ण भारत में सती प्रथा को समाप्त कराने में11 वर्ष का लम्बा समय लगा। भारत का गवर्नर जनरल बनने पर 1829 में 'सती निर्मूलन एक्ट' पास किया। राजा राम मोहन राय ने अपने भाई की मृत्यु के बाद भाभी को जबरन सती कराए जाने का विरोध किया। राजा राममोहन राय ने अपनी पुस्तक 'ए कांफ्रेंस बिटवीन एन एडवोकेट फॉर एंड एन अपोनेंट टू दी प्रैक्टिस ऑफ बर्निंग विडोज अलाइव' पुस्तक द्वारा हिन्दुओं की इस मान्यता का विरोध किया कि 'सती प्रथा' शास्त्र सम्मत है। नवजागरण काल में एक तरफ स्त्रियों के लिए प्रचलित कुरीतियों का खंडन किया जा रहा था तो दूसरी तरफ स्त्रियों को शिक्षित करने के लिए विभिन्न प्रयास किए जा रहे थे। ईसाई मिशनरियों द्वारा लड़कियों के लिए स्कूल 1810 में खोले गए। गुरूमोहन विद्यालंकार ने 1819 में बांग्ला भाषा में स्त्रियों की शिक्षा से संबंधित पुस्तक लिखी। हिंदू समाज सुधारकों को यह भय था कि ईसाई मिशनरियों द्वारा बालिकाओं के लिए खोले गए विद्यालयों से ईसाई धर्म का प्रचार प्रसार होगा। अतः "मिशनरी स्कूलों द्वारा ईसाइयत फैलाने के खतरे से डर कर बंगाल में हिंदू एवं ब्राह्मण कन्या पाठशालाएं खोली गईं। "[25] ज्योतिबा फुले ने परंपराओं के विरुद्ध जाकर 1848 में पुणे में लड़कियों की शिक्षा के लिए स्कूल खोला। 1852 तक ज्योतिबा फुले द्वारा तीन कन्या पाठशालाएं खोली गईं। इसके लिए ज्योतिबा फुले को पिता द्वारा अपने ही परिवार से बहिष्कृत कर दिया गया था। समाज सुधारक ईश्वरचंद विद्यासागर ने 1850 में बांग्ला भाषा में प्रकाशित पुस्तक द्वारा विधवा पुनर्विवाह को शास्त्र सम्मत बताया। 1856 में विधवा पुनर्विवाह के लिए कानून पारित कर दिया गया। परंतु इस कानून से भी विधवाओं की स्थिति में उल्लेखनीय सुधार नहीं हुआ। नवजागरण काल में स्त्री शिक्षा के प्रचार के लिए चलाए गए अभियानों में यह बात विचार करने योग्य थी कि लाला लाजपत राय, सर सैयद अहमद खान जैसे समाज सुधारक अपने-अपने धार्मिक संप्रदायों में स्त्रियों की गृहस्थी से संबंधित शिक्षा पर अधिक जोर दे रहे थे। उन्नीसवीं सदी के समाज सुधारक स्त्री शिक्षा, विधवा पुनर्विवाह, सती प्रथा तथा बाल विवाह विरोध इत्यादि के लिए कार्य कर रहे थे परंतु इस काल के पुरुष समाज सुधारकों द्वारा स्त्रियों को उनकी पारंपरिक

छवि में बंधे रहने की हिदायत भी दी जा रही थी। यही कारण था कि पंडिता रमाबाई, पहली महिला उपन्यासकार काशीबाई कानितकर, डाक्टरी की पढ़ाई पूरी करने वाली पहली महिला आनंदीबाई जोशी, रक्माबाई जैसी महिलाओं पर विद्रोही स्त्रियों का टैग लगा दिया जा रहा था। पंडिता रमाबाई का धर्म परिवर्तन कर ईसाई बनना भी इसी श्रेणी में आता है। "रमाबाई पहली महिला प्रचारिका थीं जिन्हें महिलाओं की हितैषी होने एवं उनके पक्ष पोषण के लिए प्रसिद्धि मिली परंतु सुधार आंदोलनों के अंदर उन्हें पूरी तरह स्वीकार नहीं किया गया। यही कारण था कि वह धर्म परिवर्तन कर ईसाई बन गईं। "[26] 19वीं सदी में महिलाओं का राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन से जुड़ना भी उनके मुक्ति के मार्ग को प्रशस्त कर रहा था। स्वर्ण कुमारी देवी, सरला देवी घोषाल, मैडम भीका जी कामा, ऐनी बेसेंट, सरोजिनी नायडू, बीबी अमातस सलाम, हजारा बेगम, बेगम अनीस किदवई इत्यादि महिलाएं स्वतंत्रता आंदोलन में अपनी भागेदारी सुनिश्चित करने के साथ ही अन्य महिलाओं के बीच चेतना जागृत करने का कार्य भी कर रही थीं। स्वर्ण कुमारी देवी ने विधवाओं को अध्यापन हेतु प्रशिक्षित करने के लिए 1886 में 'सखी समिति' नामक एक महिला संगठन का गठन किया था। स्वर्ण कुमारी देवी, 1884 में 'भारती' पत्रिका की प्रधान संपादक बनी थीं। स्वर्ण कुमारी देवी छोटी आयु से ही लेखन में सक्रिय थीं। मातृभाषा बांग्ला में उन्होंने 25 किताबें लिखीं जिसमें पाठ्य पुस्तकें, लघु कहानियाँ तथा नाटक इत्यादि शामिल थे। स्वर्ण कुमारी देवी का 1890 के कांग्रेस सत्र में बंगाल राज्य की दूसरी महिला प्रतिनिधि के रूप में चयन हुआ था। 1927 में स्वर्ण कुमारी देवी को कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा 'जगत्तारिणी स्वर्णपदक' से पुरस्कृत किया गया तथा 1929 में वह बंग साहित्य सम्मलेन की अध्यक्ष बनीं। स्वर्ण कुमारी देवी की पुत्री सरला देवी घोषाल राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन के पुनुरुत्थानवादी विचारधारा से जुड़ी हुई थीं। मैसूर के महारानी बालिका विद्यालय में एक वर्ष तक सहायक अधीक्षिका के रूप में कार्य करने के पश्चात वह कलकत्ता वापस आकर 1895 में 'भारती' पत्रिका की संपादक बनीं। "सरला देवी घोषाल बंगाल में पुनुरुत्थानवादी आंदोलन में गहराई से जुड़ी हुई थीं। उनका स्पष्ट मत था कि वे मैकाले द्वारा

प्रचारित इस ऐतिहासिक मिथक को तोड़ कर रहेंगी कि बंगाली एक डरपोक कौम है। "[27] सरला देवी ने देश के नौजवानों को विभिन्न प्रकार के व्रतों यथा प्रतापादित्य व्रत, उदयादित्य व्रत तथा वीराष्ट्मी व्रत रखने के लिए प्रेरित किया। विवाह के पश्चात 1905 में वह लाहौर चली गईं जहाँ 1910 में उन्होंने 'भारत स्त्री महामंडल' की स्थापना की। सरला देवी, उपन्यासकार बंकिमचन्द्र के उपन्यासों की स्त्री नायिकाओं शांति देवी तथा देवी चौधरानी के चरित्रों से बेहद प्रभावित थीं। तत्कालीन स्वतंत्रता संग्राम के रूढ़िवादी पुरुष नेताओं द्वारा सरला देवी के प्रयासों का विरोध भी किया जा रहा था। "रंगालय के 1903 के सितंबर के एक आलेख में सरलादेवी की आलोचना में उन्हें एक कुपात्र हिंदू स्त्री बताया गया। "[28] 1905 से 1908 के बीच बंगाल में चले स्वदेशी आंदोलन में स्त्रियों ने उल्लेखनीय रूप से अपनी सहभागिता दर्ज की। यह समय ऐसा भी था जब स्त्री की छवि को राष्ट्रमाता के रूप में प्रतिष्ठित किया जा रहा था। वी. डी सावरकर की 'अभिनव भारत सोसायटी' से जुड़े वंदेमातरम् ग्रुप की सदस्य मैडम भिका जी रुस्तम जी कामा स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय थीं। ऐनी बेसेंट कांग्रेस की पहली महिला अध्यक्ष थीं और उन्होंने स्त्रियों को मताधिकार दिलाने के लिए उल्लेखनीय प्रयास किए। भारतीय कांग्रेस में सक्रिय रूप से कार्यरत सरोजिनी नायडू ने सन 1906 में संपन्न 'भारतीय समाज सम्मेलन' में कहा, "मैं आपको चेतावनी देती हूँ कि आप अपनी स्त्रियों के परंपरागत अधिकारों को बहाल करें क्योंकि जैसा मैंने पहले भी कहा है, आप नहीं असली राष्ट्रनिर्माता हम हैं तथा हमारे सक्रिय सहयोग के बिना प्रगति के किसी भी बिंदु पर की जाने वाली आपकी सभी बैठकें तथा कांग्रेसें व्यर्थ होंगी। आप अपनी स्त्रियों को शिक्षित करें और देखें कि राष्ट्र स्वयं अपनी रक्षा कर लेगा क्योंकि यह बात कल भी सत्य थी, आज भी है और रहती दुनिया तक सत्य रहेगी कि, पालना झुलाने वाले हाथ ही विश्व पर शासन करते हैं। "[29] सरोजिनी नायडू के नेतृत्व में एक प्रतिनिधि मंडल 1917 में मान्टेग्यु तथा चेम्सफोर्ड समिति से मिला। प्रतिनिधि मंडल का मुख्य उद्देश्य स्त्रियों की स्थिति में सुधार संबंधी परियोजनाएं तथा कार्यक्रम चलाना था। प्रगतिशील विचारक तथा स्त्री शिक्षा के लिए प्रयासरत अबदी बानो बेगम

को अम्मा बी के नाम से भी जाना जाता है। 1917 में कलकत्ता में आयोजित भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस तथा अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के सत्रों को संबोधित करने वाली अबदी बानो बेगम, सरोजिनी नायडू, बसंती देवी तथा बेगम हजरत मोहानी इत्यादि के साथ राष्ट्रीय आंदोलन की एक प्रमुख महिला नेता के रूप में उभरीं।

बीबी अमातस सलाम महात्मा गांधी की अनुयायी थीं। 'हिंदुस्तान' नामक उर्दू पत्रिका के सम्पादन के साथ ही वह स्वतंत्रता प्राप्ति के आंदोलनों में भी सक्रिय थीं। बीबी अमातस सलाम ने विभाजन के समय हुए सांप्रदायिक दंगों के समय उत्तर-पश्चिम सीमांत सिंध तथा नौखाली क्षेत्रों का दौरा महात्मा गांधी के राजदूत के रूप में किया। 1935 में लखनऊ के करामात हुसैन महिला कॉलेज में व्याख्याता हजारा बेगम ने अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ के गठन में प्रसिद्ध कवि सज्जाद जहीर के साथ काम किया। स्वतंत्रता में सक्रिय भागेदारी के लिए उन्होंने सरकारी नौकरी से भी इस्तीफा दे दिया था। अनीस किदवई ने 1956 से 1962 तक राज्यसभा में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस का प्रतिनिधित्व किया। विभाजन के बाद गाँधी जी के निर्देशन में सुभद्रा जोशी, मृदुला साराभाई तथा अन्य महिला नेताओं के साथ काम किया। तेलंगाना सशस्त्र संघर्ष में भाग लेने वाली बाजी जमालुन्नीसा ने साहित्यिक समाज 'बजमे अहबाब' की स्थापना की जिसके माध्यम से समाज के अनुचित रीति-रिवाजों पर चर्चा आरंभ की गई। 1910 से 1920 के बीच के समय में अखिल भारतीय महिला संगठनों के गठन की पहल शुरू हुई। "बंगाल में बंग महिला समाज एवं अघोरी कामिनी नारी समिति, महाराष्ट्र में सतारा अबलोन्नती सभा, बंगलूर में महिला सेवा समाज, बनारस में भारत महिला परिषद तथा इलाहाबाद में प्रयाग महिला समिति जैसे स्थानीय तथा क्षेत्रीय संगठनों ने अखिल भारतीय संगठनों का समर्थन किया। "[30] भारत का पहला संप्रदायनिरपेक्ष तथा नारियों के प्रति पूर्णतः समर्पित संगठन 'विमेंस इंडियन एसोसिएशन' था। 'विमेंस इंडियन एसोसिएशन' की स्थापना 1917 में ऐनी बेसेंट, डोरोथी जिन राजदास, मालती पटवर्धन, अम्मू स्वामीनाथन, श्रीमती दादाभाई एवं श्रीमती अम्बुजम्मल ने मिल कर की थी। राष्ट्रवादी आंदोलन

से जुड़ी मुख्य महिलाओं में नाम कमलादेवी चट्टोपाध्याय(1903- 1990) का भी आता है। कमला देवी चट्टोपाध्याय 1926 में अपने गृह राज्य मंगलूर से चुनाव में खड़ी होने वाली पहली महिला थीं। वह अखिल भारतीय महिला सम्मलेन की संस्थापक सदस्यों में से एक थीं। 1929 में उन्होंने प्राग में आयोजित 'विमेंस लीग फॉर पीस एंड फ्रीडम' में अखिल भारतीय महिला कांग्रेस की सदस्य के रूप में भाग लिया। हैदराबाद के एक बंगाली ब्राह्मण परिवार में जन्मी सरोजिनी नायडू जीवन पर्यंत महिला जागरूकता तथा महिला अधिकारों की प्रबल समर्थक रहीं। बीसवीं सदी की शुरुआत में राजकुमारी अमृतकौर, लेडी पिरोजबाई फिरोजशाह मेहता, श्रीमती ऐ. सेन गुप्ता, सुश्री लज्जावंती, पार्वती देवी, अनुसुइया साराभाई इत्यादि महिलाओं के अधिकारों के लिए विशेष रूप से काम कर रही थीं। एक धनी उद्योगपति की बहन होने के बावजूद अनुसुइया साराभाई ने मजदूरों के हक़ के लिए अनवरत कार्य किया। 1930 में अनुसुइया भारतीय महिला सम्मलेन की सदस्य बनीं। मोतीलाल नेहरू के भांजे की पत्नी लाडो रानी जुत्सी भी सक्रिय रूप से राष्ट्रीय आंदोलनों में जुटी हुई थीं। लाडो रानी जुत्सी ने लाहौर में 'कुमारी सभा' की स्थापना की थी। प्रांतीय स्तर पर बने महिला संगठनों के सम्मिलित रूप में 'अखिल भारतीय महिला सम्मलेन(दी आल इंडिया विमेंस कांफ्रेंस) का अस्तित्व उभरा। अखिल भारतीय महिला सम्मलेन, इंडियन विमेंस एसोसिएशन तथा नेशनल काऊंसिल ऑफ विमेन इत्यादि संगठन स्त्रियों को मताधिकार दिलाने तथा स्त्रियों की कानून से संबंधित समस्याओं को सुलझाने के लिए विशेष रूप से कार्य कर रहे थे। अखिल भारतीय महिला सम्मलेन द्वारा 1943 के बंगाल दुर्भिक्ष के समय कलकत्ता तथा आसपास के अन्य जिलों में राहत कार्य के साथ ही विजयलक्ष्मी पंडित की अध्यक्षता में 'बाल रक्षा कोष' की स्थापना भी की गई। राष्ट्रवादी आंदोलनों में महिलाओं की भागीदारी बढ़ती जा रही थी, परंतु प्रायः राष्ट्रवादी पुरुष कार्यकर्ताओं के तयशुदा दायरों के अंतर्गत ही महिलाओं को इन आंदोलनों में भाग लेने की अनुमति दे रहे थे। अतः महिलाओं की स्वतंत्रता को ले कर दो विभिन्न प्रकार की विचारधाराएं जन्म ले रही थीं। पहली विचारधारा के रूढ़िवादी और स्त्री की पारंपरिक छवि की

पोषक थी। इस विचारधारा के लोग स्त्री की छवि को मात्र "माँ" की भूमिका में देखते थे। एक "माँ" के तौर पर वह स्त्रियों को उनके वाजिब अधिकार दिलाने के पक्षधर थे। दूसरी विचारधारा के अनुयायी यह मानते थे कि स्त्रियाँ पुरुषों से किसी भी मायने में कम नहीं हैं, अतः उन्हें भी पुरुषों के समान ही अधिकार मिलने चाहिए। वास्तव में इसी विचारधारा के पोषकों ने लिंग समानता के लिए अधिकाधिक प्रयास किए। बंगाल के रूढ़िवादी ब्राह्मण परिवार में जन्मी अरुणा(गांगुली) आसफ अली ने भी स्त्रियों की पारंपरिक छवि को तोड़ते हुए आयु में दुगुनी के कांग्रेसी नेता एम. आसफ अली से विजातीय विवाह किया। 1942 के 'भारत छोड़ो' आंदोलन के दौरान वह कांग्रेस के सशक्त नेता बन कर उभरीं और 1942 के आंदोलन की नायिका के रूप में प्रतिष्ठित हुईं।

अखिल भारतीय महिला सम्मलेन द्वारा श्रमिक महिलाओं की स्थिति सुधार के संबंध में उल्लेखनीय प्रयास किए गए। तत्कालीन परिवेश में कोयला खदान तथा कपड़ों की मिल यह दो संस्थान ऐसे थे जिसमें अधिकाधिक संख्या में महिलाओं को रोजगार प्राप्त हो रहा था। इन संस्थानों में कार्य करते हुए महिलाओं में संगठित होने की भावना भी बलवती होने लगी। यह वह समय भी था जब महिलाएं रोजगार के विभिन्न क्षेत्रों में अपनी भागेदारी सुनिश्चित कर रही थीं। लड़कियों को विभिन्न प्रकार की छात्रवृत्ति के माध्यम से शिक्षित होने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा था। ध्यान देने वाली बात यह है कि प्रत्यक्ष रूप से कोई बंधन न होने के बावजूद विज्ञान के क्षेत्र में महिलाओं के आगे बढ़ने की संभावनाएं बहुत सीमित थीं। 'स्त्री संघर्ष का इतिहास' की लेखिका राधा कुमार लिखती हैं कि "हालांकि स्त्रियों पर ज्यादा पाबंदी न होने के बावजूद उनके काम की संभावनाएं सीमित थीं। मिसाल के तौर पर 'अखिल भारतीय महिला सम्मलेन' ने विधि, चिकित्सा, वास्तु एवं सामाजिक विज्ञान पढ़ने वाली स्त्रियों को छात्रवृत्ति देने के लिए तो धन संग्रह किया परंतु भौतिकी या रसायन शास्त्र पढ़ने वाली छात्राओं के लिए नहीं। "[31]

गांधी जी के भारतीय राजनीति में पदार्पण के साथ ही महिलाएं विशाल संख्या में सत्याग्रहों तथा विरोध प्रदर्शनों में सार्वजनिक रूप से अपनी भागेदारी सुनिश्चित करने लगीं। गाँधी जी द्वारा 1930

में आरंभ किया गया 'नमक आंदोलन' इस दिशा में एक बहुत बड़ा कदम था। "नमक सत्याग्रह को आमतौर पर भारतीय स्वाधीनता के संघर्ष में पहली बार भारतीय स्त्रियों की व्यापक सहभागिता के रूप में याद किया जाता है। "[32]

गाँधी जी ने अपने भाषणों के माध्यम से भारत की आजादी के साथ ही स्त्रियों की आजादी और अस्पृश्यता की समाप्ति को भी वरीयता दी। भारतीय राष्ट्रवादी स्त्रियों की विचारधारा विभिन्न मुद्दों पर पाश्चात्य नारीवादी आंदोलनों से भिन्न थी। "सरोजिनी नायडू तथा बेगम शाहनवाज ने घोषणा की कि भारतीय महिलाओं का आंदोलन पश्चिमी महिलाओं के आंदोलन की तरह केवल 'स्त्रीवादी' नहीं है। "[33] इंग्लैंड में महिलाओं को समान नागरिक अधिकार दिलाने के लिए बनी राष्ट्रीय यूनियन की अध्यक्ष ऐलीनर रैथबोन, अखिल भारतीय महिला सम्मलेन के साथ बाल विवाह के दुष्परिणामों पर एक पुस्तक तैयार करना चाहती थीं। परंतु कमला देवी चट्टोपाध्याय राष्ट्रीय संस्था से जुड़ी होने के नाते अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के साथ काम करने की इच्छुक नहीं थीं। इसका एक कारण यह भी था कि कैथरीन मायो ने अपनी पुस्तक 'मदर इंडिया' में हिंदू मान्यताओं और रूढ़िवादी परंपराओं की आलोचना की थी। बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध के नारीवादी आंदोलनों के विषय में शोध अध्येता राधा कुमार लिखती हैं कि, "उस वक्त यानी सन 1940 के दशक में क्षितिज पर स्वाधीनता का इंद्रधनुष दिखाई दे रहा था और शायद यही कारण था कि स्त्रियों का आंदोलन पूरी तरह से स्वाधीनता संग्राम में तब्दील हो गया और नारीमुक्ति के मुद्दे को भारत की स्वाधीनता से जोड़कर देखा जाने लगा। "[34]

स्त्री चेतना के प्रसार में भारत में पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका-

भारत में नवजागरण काल के दौरान स्त्री केन्द्रित पात्र- पत्रिकाएँ व्यापक स्तर पर स्त्री चेतना के प्रसार का माध्यम बन रहीं थीं। 19वीं सदी के आखिरी दशकों में भारत के विभिन्न भागों में स्त्रियों के स्वतंत्र संगठनों का गठन किया जा रहा था। पंडिता रमाबाई, रमाबाई रानाडे, आनंदी बाई जोशी, फ्रानना सारोब जी, ऐनी जगन्नाथ तथा रक्माबाई इत्यादि ने पितृसत्तात्मक व्यवस्था द्वारा बनाए गए

रूढ़िवादी नियम- कायदों का पुरजोर विरोध किया तथा विदेश से ऊँची शिक्षा प्राप्त करके भारत में भी स्त्री संगठनों के माध्यम से समाज के हर तबके की स्त्रियों में जागरूकता लाने का प्रयास किया। हिंदी साहित्य के विकास के आधुनिक काल के प्रवर्तक माने जाने वाले भारतेंदु हरिश्चंद्र ने सर्वप्रथम हिंदी की पहली स्त्रियों से संबंधित पत्रिका 'बालाबोधनी' 1874 में निकाली। इस पत्रिका के माध्यम से राष्ट्र की स्वतंत्रता तथा जनतांत्रिक विचारधारा के प्रति जागरूकता तो बढ़ी परंतु व्यापक रूप से स्त्री चेतना के प्रसार का कार्य 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में महाराष्ट्र, गुजरात और बंगाल में स्त्रियों द्वारा शुरू किए गए स्त्री आंदोलनों ने किया। 1909 में रामेश्वरी नेहरू ने इलाहाबाद में 'प्रयाग महिला समिति' के गठन के साथ ही 'स्त्री दर्पण' पत्रिका भी निकाली। 'स्त्री दर्पण' द्वारा महिलाओं की समस्याओं से जुड़े मुद्दों को उठाया गया तथा पूर्ण निष्ठा एवं गंभीरता से इन समस्याओं को हल करने के प्रयास भी किए गए। 'स्त्री दर्पण' के समय ही महिलाओं से जुड़े मुद्दों को गंभीरता से छापने वाली दूसरी पत्रिका 'गृहलक्ष्मी'(1909) थी। 'गृहलक्ष्मी' ने समाज और राष्ट्र से जुड़े मुद्दों की तरफ महिलाओं का ध्यान आकर्षित किया। बनारस से छपने वाली 'आर्य महिला' वैदिक रीति से स्त्रियों को शिक्षित करने की पक्षधर थी। हिंदी की साहित्यिक पत्रिकाओं 'सरस्वती' और 'माधुरी'(1921) के माध्यम से हिंदी क्षेत्र का स्त्री पाठक वर्ग वैश्विक स्तर पर महिला प्रगति के लिए कार्य कर रही महिलाओं के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकता था। अलीगढ़ से पंडित देवदत्त शर्मा द्वारा निकाली जाने वाली 'महिला सर्वस्व' में स्त्रियों की जागरूकता से संबंधित लेख छपा करते थे। दो वकीलों की पत्नियों द्वारा निकाले जाने वाली 'कायस्थ महिला हितैषी' भी स्त्रियों के हित से संबंधित पत्रिका थी। रामरिख सहगल और रामकृष्ण मुकुंद लघाटे के सम्पादन में तथा श्रीमती विद्यावती सहगल के संचालन में 1922 में इलाहाबाद से महिलाओं की पत्रिका 'चाँद' का प्रकाशन शुरू हुआ। इसप्रकार बीसवीं सदी के आरंभिक दशकों में स्त्रियों को जागरूक बनाने के लिए कई सारी पत्रिकाओं तथा पत्रों का प्रकाशन हो रहा था। बांग्ला भाषा में प्रकाशित पत्रिकाओं 'बंग महिला'(1870), 'बामाबोधिनी'(1863), 'मासिक पत्रिका' (1854), 'परिचारिका' (1878)

तथा 'अन्तःपुर' (1898) इत्यादि ने स्त्री शिक्षा पर बल दिया। महिलाओं को जागरूक करने के उद्देश्य से भारतीय समाज में स्त्री की पिछड़ी दशा पर क्षोभपूर्ण लेख इन पत्रिकाओं में छपा करते थे। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध तक बंगाली स्त्रियों ने लेखों के माध्यम से स्त्री की सामाजिक दोयम स्थिति पर प्रश्न उठाए। प्रमिला बाला मित्रा ने 'बामाबोधिनी' में प्रकाशित आलेख 'नारीर कर्तव्य' में लिखा कि पुरुष नहीं बल्कि स्त्रियाँ समाज की निर्माता तथा संरक्षक हैं। शतदलबासिनी देवी ने 'महिला' पत्रिका में प्रकाशित अपने आलेख 'नारी शक्तिर अपछय' के माध्यम से स्त्री और पुरुषों के बराबर अधिकारों का समर्थन किया। स्वदेशी आंदोलन के दौरान ललिता रॉय ने अपने आलेख 'देश सेवाय नारी जाति' में लिखा कि जब तक स्त्री दासी और पुरुष सेवक की भूमिका में रहेगा, देश का कल्याण नहीं हो सकता, इसलिए जरूरी है कि स्त्रियाँ भी राजनैतिक आंदोलनों में भाग लें। सरला देवी द्वारा संपादित 'भारती' (1877) पत्रिका में 'गैर औद्योगिकीकरण', 'बंगाली पुरुषों में साहस का अभाव', 'स्वदेशी उद्यमों की अनुपस्थिति' तथा 'हिंदू-मुस्लिम एकता' इत्यादि विषयों पर अनेक लेख प्रकाशित हुए।

असमिया महिला पत्रिकाएं महिलाओं के रचनात्मक लेखन को प्रकाशित करने के साथ ही स्त्री चेतना के प्रचार-प्रसार का माध्यम बन रही थीं। इस संदर्भ में 1927 में कमलालय काकोटी तथा कनकलता चालिहा के संपादन में प्रकाशित पत्रिका 'घर जीउती' का महत्वपूर्ण स्थान है। अपने प्रकाशन के कुछ समय पश्चात ही यह पत्रिका 'असम महिला समिति' का मुख पृष्ठ बन गई तथा इसके माध्यम से महिलाओं को सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक जगह मिली। पत्रिका में 'सामयिक जगत' कालम के साथ ही महिला शिक्षा, प्रगति इत्यादि विषयों पर महत्वपूर्ण आलेख प्रकाशित किए जाते थे। पत्रिका के माध्यम से स्वर्णलता सैकियानी तथा राजबाला दास ने राष्ट्रीय अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर महिलाओं की स्थिति तथा प्रगति पर विस्तार से लिखा। 1929 में प्रकाशित जर्नल 'आह्वान' में भी स्त्री चेतना से संबंधित लेख प्रकाशित होते थे।

स्त्री संगठनों द्वारा चेतना प्रसार:

19वीं सदी के आखिरी दशकों में स्त्रियाँ अपने नागरिक अधिकारों के प्रति जागरूक हो रही थीं। यही वह समय था जब पढ़ी-लिखी स्त्रियों द्वारा स्वतंत्र स्त्री संगठनों का भी गठन किया जा रहा था। भारत के प्रथम गद्य- लेखिका के रूप में जानी जाने वाली 'स्वर्ण कुमारी देवी' महर्षि देवेंद्रनाथ टैगोर की पुत्री तथा कवि-गुरू रवींद्रनाथ टैगोर की बड़ी बहन थीं। स्वर्ण कुमारी देवी ने 'भारती' पत्र के संपादन के साथ ही साथ उपन्यास तथा कहानियों की भी रचना की। उनके द्वारा विज्ञान संबंधी लिखी किताबें तत्कालीन पाठ्यक्रम में भी चलती थीं। स्वर्ण कुमारी देवी ने 1986 में 'सखी समिति' नामक एक समिति गठित की। यह भारत का पहला लेडीज एसोसिएशन था। 'सखी समिति' द्वारा समाज संबंधी कार्यों में सक्रिय भूमिका निभाए जाने के साथ ही महिलाओं और लड़कियों को ऐसे कार्य सिखाए जाते थे जिस से वह अपने पैरों पर खड़ी हो सकें।

पंडिता रमाबाई ने 1892 में पूना में 'शारदा सदन' की स्थापना की। पंडिता रमाबाई की गिनती भारत की अग्रणी लिबरल फेमेनिस्ट में होती है। 'थिओसौफिकल सोसायटी' के पंडित केशव चंद्र सेन द्वारा उन्हें पंडिता की उपाधि प्रदान की गई थी। पंडिता रमाबाई ने भारत में विधवाओं के त्रासपूर्ण जीवन को भोगा था। अपने पति की मृत्यु के बाद पंडिता रमाबाई ने इंग्लैंड जाकर ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया था। पहले अंतर्जातीय विवाह तथा बाद में धर्म परिवर्तन के कारण पंडिता रमाबाई भारत के एक तबके विशेष द्वारा सदैव आलोचना की पात्र रहीं। फुले दम्पंत्ति द्वारा रमाबाई को काफी सहयोग मिला। ब्रिटिश सरकार द्वारा 1882 में भारत में शिक्षा के लिए बने कमीशन के लिए पंडिता रमाबाई ने कहा, "इस देश में 100 में से 99 पढ़े लिखे पुरुष स्त्री शिक्षा और उसे बराबरी की दर्जा देने से कतराते हैं। पढ़ी-लिखी महिलाओं की छोटी सी गलती को बहुत बड़ा बना कर उनके चरित्र पर कीचड़ उछाला जाता है। हिन्दुस्तान को सुधारना है तो महिला टीचर्स और डाक्टर्स की गिनती बढ़ानी पड़ेगी।"[35] महारानी विक्टोरिया ने उनके इस सुझाव तथा महिला शिक्षा के लिए उनके द्वारा किए जा रहे प्रयासों के लिए उन्हें 'कैसर-ए-हिंद' की उपाधि से विभूषित किया। पंडिता

रमाबाई ने 'शारदा सदन' की संस्थापक के रूप में महिलाओं के हित के लिए जीवन पर्यंत कार्य किया। कर्नाटक के गुलबर्गा में उन्होंने एक स्कूल की स्थापना की। पंडिता रमाबाई ने ब्रिटेन प्रवास में 'द हाई कास्ट हिंदू विमेन' नामक एक पुस्तक लिखी। भारत में महिलाओं के संदर्भ में जिस प्रकार से धार्मिक कर्मकांड, पाखंडपूर्ण रीति-रिवाजों का प्रचलन था, उन सभी के विषय में इस पुस्तक में विस्तार से चर्चा की गई थी। 'बाल विवाह', 'सती प्रथा', 'जाति प्रथा' कुछ ऐसी ही प्रथाएं थीं जिनमें भारतीय स्त्री का जीवन घुट-घुट कर रह जाता था। पंडिता रमाबाई की किताब 'द हाई कास्ट हिंदू विमेन' भारत में महिलाओं की दयनीय स्थिति पर प्रकाश डाला। महिलाओं की इस स्थिति को हिंदू धर्म से भी स्वीकृति मिली हुई थी। पंडिता रमाबाई ने बेझिझक स्पष्ट शब्दों में धर्म की इस घुटन को अपनी पुस्तक में उकेरा था। इसके लिए उन्हें काफी आलोचना का शिकार भी होना पड़ा। यही वह समय भी था जब स्वामी विवेकानंद हिंदू धर्म के व्यापक प्रचार-प्रसार में लगे हुए थे। 1893 में जब स्वामी विवेकानंद 'शिकागो धर्म सम्मलेन' में 'हिंदू धर्म' की विशेषताओं पर प्रकाश डाल रहे थे तब पंडिता रमाबाई ने लिखा, "मैं अपनी पश्चिम की बहनों से गुजारिश करती हूँ कि बाहरी खूबसूरती से संतुष्ट न हों। महान दर्शन की बाहरी खूबसूरती, पढ़े-लिखे पुरुषों के बौद्धिक विमर्श और भव्य प्राचीन प्रतीकों के नीचे काली गहरी कोठरियाँ हैं। इनमें तमाम महिलाओं और नीची जातियों का शोषण चलता रहता है।"[36] पंडिता रमाबाई की 'हिंदू धर्म' के प्रति ये कड़वाहट एक विधवा होने के नाते उनके भोगे यथार्थ से उपजी थी। पंडिता रमाबाई को अपने प्रयासों के लिए वैश्विक स्तर पर प्रसिद्धि मिली। शुक्र ग्रह के एक क्रेटर का नाम उनके नाम पर रखा गया। 5 अप्रैल को यूरोप के चर्च रमाबाई को फीस्ट डे के रूप में याद करते हैं। पंडिता रमाबाई ने पूना में 'आर्य महिला समाज' की स्थापना की। पंडिता रमाबाई के समकक्ष ही समाज सेविका रमाबाई रानाडे का नाम आता है। रमाबाई रानाडे ने 1902 में 'हिंदू लेडीज सोशल एंड लिटरेरी क्लब' खोला तथा 1909 में पूना में 'सेवा सदन' की स्थापना की। रमाबाई रानाडे का विवाह मात्र 11 वर्ष की आयु में उनसे काफी बड़े तथा राष्ट्रवादी, समाज सुधारक, विद्वान, महाराष्ट्र

के सुकरात के रूप में पहचान पाने वाले 'महादेव गोविन्द रानाडे' के साथ हुआ था। विवाह के समय रमाबाई रानाडे पूर्णतः निरक्षर थीं क्योंकि उस समय महिलाओं का शिक्षा ग्रहण करना सामाजिक दृष्टि से अच्छा नहीं माना जाता था। गोविन्द रानाडे न्यायाधीश होने के साथ ही समाज सुधारक भी थे अतः उन्होंने रमाबाई की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया। गोविन्द रानाडे की मृत्यु के पश्चात् रमाबाई भावनात्मक रूप से बेहद कमजोर पड़ गईं और उन्होंने सभी प्रकार की सामाजिक गतिविधियों से स्वयं को अलग कर लिया। मुंबई के दो समाज सेवियों तलबरी तथा गिडूमल ने मुंबई में में 'सेवासदन' की स्थापना की तथा रमाबाई रानाडे को इस सदन के आजीवन सलाहकार तथा अध्यक्ष के रूप में चुना। 'सेवासदन' का उद्देश्य महिलाओं को शिक्षित कर उन्हें अपने पैरों पर खड़ा करना था। 1909 में 'सेवासदन' की एक शाखा पुणे में खोली गई तथा इसके अंतर्गत एक विद्यालय की भी स्थापना की गई। 1911 तक 'सेवासदन' में महिलाओं को नर्सिंग तथा प्रसूति की शिक्षा एवं प्रशिक्षण दिया जाने लगा। यह काम शुरूआती दौर में रमाबाई रानाडे के लिए इतना आसान नहीं था। उस समय लड़कियों के लिए नर्सिंग को अच्छे व्यवसाय के रूप में नहीं देखा जाता था। नर्सिंग तथा प्रसूति प्रशिक्षण के लिए भारत की परम्परावादी महिलाओं का झुकाव बेहद कम था। प्रशिक्षण के लिए भाषा की समस्या भी प्रमुख समस्याओं में से एक थी। सम्पूर्ण पाठ्यक्रम अंग्रेजी में होने के कारण अधिकांश महिलाएं इसे समझने में असमर्थ थीं। इसके लिए रमाबाई ने संपूर्ण पाठ्यक्रम को हिंदी में बनवाया। उस समय का समाज जाति और धर्म के बंधनों में जकड़ा हुआ था। 'सेवासदन' में प्रशिक्षण ले रही महिलाओं को रमाबाई रानाडे ने जाति,धर्म, वर्ण, पंथ इत्यादि के भेदभाव को भुला कर संपूर्ण हृदय से मरीजों की सेवा में तत्पर रहने का सन्देश दिया। स्वास्थ्य क्षेत्र के अतिरिक्त उन्होंने स्त्रियों की प्राथमिक शिक्षा के लिए चल रहे आंदोलनों में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। रमाबाई रानाडे ने 'आर्य महिला समाज' की स्थापना में पंडिता रमाबाई को यथासंभव सहयोग दिया। रमाबाई रानाडे ने स्त्रियों के मताधिकार तथा राजनीतिक मुद्दों में उनकी सामान भागेदारी के पक्ष में अपनी आवाज मुखर की। विवाह के समय तक निरक्षर रहने के

बावजूद रमाबाई अपने अथक परिश्रम तथा महिलाओं की उन्नति के लिए किए गए प्रयासों से लाखों-करोड़ों महिलाओं के लिए प्रेरणास्रोत बनीं।

देश के हर भाग में इस समय स्त्री संगठनों का गठन किया जा रहा था। इसी क्रम में सुमति देवी ने 1905 में कोलकाता में 'महिला समिति' का गठन किया। अहमदाबाद में 1908 में 'गुजरात स्त्री मंडल' की स्थापना की गई तथा मैसूर में 1913 में 'महिला सेवा समाज' का जन्म हुआ। पूना में 1916 में स्थापित 'भगिनी समाज' स्त्री आंदोलनों के महत्वपूर्ण संगठनों में से एक था। 1917 में ऐनी बेसेंट ने मार्ग्रेट कजिंस के साथ मिल कर मद्रास में स्त्रियों के पहले अखिल भारतीय संगठन 'विमेंस इंडिया एसोसिएशन' की स्थापना की। इस संगठन का उद्देश्य महिलाओं के समानाधिकार की मांग तथा राष्ट्रीय आंदोलनों में उनकी सहभागिता बढ़ाना था। इस संगठन द्वारा 'स्त्री धर्म' पत्रिका भी निकाली गई। मद्रास के 'वीमेंस इंडिया एसोसिएशन' ने 1926 में भारत के सभी स्त्री संगठनों को बुला कर एक सम्मलेन कराया तथा 'आल इंडिया वीमेंस कांफ्रेंस' के नाम से अखिल भारतीय स्त्री संगठन की स्थापना की।

इस प्रकार जिस तरह लोकतंत्र की स्थापना तथा साम्राज्यवाद के विरुद्ध अपना स्वर मजबूत करने के लिए किसान वर्ग तथा श्रमिक वर्ग ने अपने संगठनों का निर्माण किया था उसी प्रकार महिलाओं ने भी अखिल भारतीय स्तर पर महिला संगठनों के द्वारा अपने विद्रोह के स्वर को मुखर किया।

स्वातंत्र्योत्तर नारीवादी आन्दोलन:

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात संविधान में महिलाओं को समान अधिकार दिए गए। आंबेडकर समिति ने स्त्रियों को समान नागरिक अधिकार दिलाने के लिए महत्वपूर्ण सुझाव दिए। यथा विवाह की आयु सीमा बढ़ाना, स्त्रियों को तलाक का अधिकार देना, स्त्रियों को मुआवज़ा तथा विरासत का अधिकार देना तथा दहेज़ को स्त्रीधन मानना इत्यादि। परंतु हिंदू कोड बिल को इसके समग्र रूप में पारित न करके 1955- 56 तक चार विभिन्न कानूनों, हिंदू विवाह कानून, हिंदू उत्तराधिकार कानून, हिंदू अल्प वयस्कता एवं अभिभावकत्व कानून तथा हिंदू गोद एवं गुजारा कानून के रूप में पारित

किया गया। हिंदू कोड बिल में यद्यपि स्त्रियों के अधिकार के संबंध में महत्वपूर्ण कानूनों को पारित करने के सुझाव दिए गए थे फिर भी विभिन्न संगठनों द्वारा इसका पुरजोर विरोध किया गया। डॉ. राजेंद्र प्रसाद और सरदार वल्लभभाई पटेल स्वयं भी 'हिंदू कोड बिल' पारित कराने के पक्ष में नही थे। "अखिल भारतीय हिंदू कोड बिल विरोध समिति के अनुसार हिंदू कोड बिल, हिंदू कानून की वैदिक एवं शास्त्रीय जड़ों पर प्रहार के समान था। "[37] स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात महिलाओं ने सक्रिय रूप से 1948-50 के 'तेलंगाना आन्दोलन' में हिस्सा लिया। 'तेलंगाना आन्दोलन' मुख्यतः किसान नेताओं द्वारा संचालित हो रहा था। "तेलंगाना आन्दोलन में हड़तालों तथा रैलियों में हजारों स्त्रियाँ सक्रिय थीं। आन्दोलन के नेताओं ने असामान्य रूप से पत्नियों की पिटाई जैसी 'स्त्री समस्याओं' पर भी ध्यान केंद्रित किया। "[38]

1970 के दशक के आरंभ में ही नक्सलवादी आन्दोलन के अनेक छोटी- छोटी धाराओं में विभक्त हो जाने के कारण नई विचारधाराओं और आंदोलनों के अस्तित्व प्रकट हुए, जिसमें संस्कृति, लिंग, जाति, कबीले जैसे हाशिए के वर्ग भी इन नए आंदोलनों का केंद्र बने। स्त्रियों ने महाराष्ट्र में शहद एवं मूल्यवृद्धि आंदोलन में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। 1972 के अंत में शुरू हुए शराब विरोधी आंदोलन में स्त्रियों की भागेदारी प्रमुख रूप से रही। शराब पी कर पुरुष अक्सर अपनी पत्नियों की पिटाई करते थे। इसके विरोध में ऐसे क्षेत्रों की स्त्रियों ने संगठित हो कर ऐसे पुरुषों के विरुद्ध कदम उठाए। शराब की बिक्री एवं शराबखोरी के विरोध में शुरू हुआ आन्दोलन पत्नी-उत्पीड़कों को सबक सिखाने की शक्ल ले चुका था। इन सबके बीच महिलाओं की ट्रेड यूनियन का अस्तित्व उभर कर आया। इला भट्ट ने 1972 में 'सेल्फ इम्प्लौयड विमेंस एसोसिएशन (सेवा)' की स्थापना की। असंगठित क्षेत्रों में काम करने वाली स्त्रियों के लिए कार्यरत संगठन 'सेवा' का उद्देश्य विभिन्न उपयोगी सूचनाओं से वंचित इन महिलाओं को प्रशिक्षण एवं तकनीकी सहायता देना था। सेवा को एक ट्रेड यूनियन के रूप में पंजीकृत कराने के लिए बहुत समस्याओं का सामना करना पड़ा। 1974 के दशक में मूल्यवृद्धि, भ्रष्टाचार तथा कालाबाजारी के विरोध में चलाए गए

'नवनिर्माण आंदोलन' में अधिकाधिक संख्या में स्त्रियों की भागेदारी से यह एक विशाल मध्यवर्गीय आंदोलन बन गया।

परंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद शुरू हुए 'तेलंगाना आंदोलन' (1948- 50), 'मूल्यवृद्धि तथा शराबखोरी के विरोध में आंदोलन' (1972) तथा महाराष्ट्र के 'नवनिर्माण आंदोलन' (1974) इत्यादि को विशुद्ध नारीवादी आंदोलन नहीं कहा जा सकता है। इन सभी आंदोलनों के मूल मंतव्य से यह स्पष्ट होता है कि घरेलू कार्यों की सारी जिम्मेदारियां महिलाओं के हिस्से आती हैं। इन आंदोलनों के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से पितृसत्ता का विरोध तो नहीं किया गया। "हालाँकि स्त्रियों की सामूहिक सार्वजनिक गतिविधियों को आमतौर पर पितृसत्ता के लिए खतरे के रूप में देखा जाता है और मूल्यवृद्धि विरोधी आंदोलन तथा नवनिर्माण आंदोलनों में हजारों स्त्रियाँ सार्वजनिक कार्यवाई में लिप्त रहीं। "[39] इन आंदोलनों ने स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात के स्त्री संगठनों की नींव डाली। आजादी के बाद लिंग समानता पर आधारित पहला महिला संगठन 'प्रोग्रेसिव ऑर्गनाइजेशन ऑफ विमेन (प्रगतिशील महिला संगठन)' हैदराबाद में स्थापित किया गया। 'प्रगतिशील महिला संगठन' के घोषणापत्र ने समतामूलक विचारों तथा स्त्रियों की बराबर भागीदारी को सुनिश्चित करने की पहल की तथा स्त्रियों की सामाजिक दोयम स्थिति के मूल में पितृसत्ता को समझने का प्रयास किया। संयुक्तराष्ट्र द्वारा 1975 को 'अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष' घोषित करने के साथ ही महाराष्ट्र में नारीवादी कार्यक्रमों में काफी इजाफ़ा हुआ। 'प्रगतिशील महिला संगठन' के आधार पर माओवादी स्त्रियों ने पुणे में 'पुरोगामी स्त्री संगठन' तथा बंबई में 'स्त्री मुक्ति संगठन' का गठन किया। दलित स्त्रियों द्वारा निर्मित संगठन 'महिला समता सैनिक दल' भी आपातकाल से पूर्व का स्त्रियों का एक महत्वपूर्ण संगठन था। 'महिला समता सैनिक दल' के घोषणा पत्र में धार्मिक कर्म-कांडों तथा जातिगत भेद-भाव को स्त्रियों की दासता के मुख्य कारकों में गिना। "ये रीति-रिवाज ही हैं जो धर्म के नाम पर दासता को बढ़ावा देते हैं। ये धर्म ही है जिसने स्त्रियों को गुलाम बना रखा है। धार्मिक पुस्तकें जो स्त्रियों तथा शूद्रों को निकृष्ट मान कर हमें शिक्षा, ज्ञान तथा स्वतंत्रता से वंचित करती हैं,

स्वार्थी हैं। ये सभी पुस्तकें पुरुषों द्वारा लिखी गई हैं तथा स्त्रियों को गुलाम बनाए रखा गया है। "[40] 1975 के आपातकाल समाप्त होने के पश्चात भारत के दो महानगरों दिल्ली तथा मुंबई में नवस्थापित नारी संगठनों की पृष्ठभूमि में बहुत अंतर था। "सत्तर के दशक के उत्तरार्द्ध में दिल्ली में गठित 'समता' या 'स्त्री संघर्ष' नामक नारीवादी संगठनों में से किसी एक में भी कोई ऐसा सदस्य नहीं था जो किसी राजनीतिक दल से जुड़ा हुआ हो। दोनों संगठनों का उदय दिल्ली विश्वविद्यालय तथा जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के संवाद समूहों से हुआ था। ...दूसरी ओर बंबई के प्रारंभिक नारीवादी समूह न तो विश्वविद्यालय आधारित थे और न ही वे छात्राओं के थे। उनके अधिकांश सदस्य वामपंथी नागरिक स्वाधीनता संगठनों, क्रांतिकारी गुटों एवं स्वतंत्र ट्रेड यूनियनों इत्यादि से संबद्ध थे। "[41] अस्सी के दशक के पूर्वार्द्ध में जयप्रकाश नारायण की संपूर्ण क्रांति की अवधारणा से प्रभावित होकर बिहार के बोधगया जिले में 'संघर्ष वाहिनी' संगठन का जन्म हुआ।

अस्सी के दशक के बाद नारीवादी संगठनों द्वारा दहेज़- मृत्यु के विरोध में तथा बलात्कार के विरोध में विभिन्न आंदोलन चलाए गए। भारत में विवाह के बाद एक स्त्री पर यदि दहेज़ की राशि को लेकर अत्याचार किया जाए या फिर विवाह के भीतर पति द्वारा पत्नी के यौन-शोषण को नितांत पारिवारिक और निजी मामला समझा जाता है जिसमें बाहर वाले हस्तक्षेप नहीं कर सकते हैं। ज्यादातर मामलों में महिलाएं भी विवाह के बाद इन अत्याचारों को भाग्य की नियति मान कर स्वीकार कर लेती हैं। नारीवादी संगठनों के समक्ष सबसे बड़ी समस्या यह थी कि ज्यादातर महिलाएं विवाह में पति द्वारा उत्पीड़ित होने पर भी पति को भगवान मानती हैं। नारीवादी संगठनों के अथक प्रयासों द्वारा विवाह के तुरंत बाद होने वाली मृत्यु और आत्महत्याओं को दहेज़ समस्या से जोड़कर देखा गया। "हालाँकि दिल्ली के समकालीन नारीवादी आंदोलन में 'महिला दक्षता समिति' पहली महिला संस्था थी जिसने दहेज़ एवं दहेज़ उत्पीड़न के मुद्दे को उठाया परंतु 'स्त्री संघर्ष' द्वारा चलाए गए अभियान के परिणामस्वरूप दहेज़ हत्या की चर्चा घर-घर में फ़ैल गई। 'महिला दक्षता समिति' ने दिल्ली में दहेज़ विरोधी प्रदर्शन आयोजित की तथा इस मुद्दे पर एक पुस्तिका भी प्रकाशित

की।"[42] 'स्त्री संघर्ष' द्वारा दहेज़ हत्या पर आधारित नुक्कड़ नाटक 'ओम स्वाहा' खेला गया। नारीवादी संगठनों द्वारा चलाए गए दहेज़ विरोधी आंदोलनों के परिणामस्वरूप कई राज्य सरकारों ने दहेज़ हत्या के विरुद्ध कानून बनाने शुरू किए। पत्रकारिता, शिक्षा तथा चिकित्सा जैसे व्यवसाय नारीवाद से सीधे रूप से प्रभावित थे। नारीवादी विचारधारा को एक विमर्श के रूप में स्वीकार करने के साथ ही विभिन्न पत्र- पत्रिकाओं में इस विमर्श पर लिखने के लिए महिला पत्रकारों, संवाददाताओं को नियुक्त किया जाने लगा। अकादमिक क्षेत्र में 'स्त्री अध्ययन' का एक विषय के रूप में प्रवेश आठवें दशक में संभव हो सका। राधा कुमार के अनुसार आठवें दशक में भारतीय नारीवाद की तीन बड़ी धाराएं विकसित हुईं। "जिन्हें क्रमशः उदारवादी, वामपंथी एवं परिवर्तनकामी नारीवादियों के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। "[43]

इस दौर में यह भी देखा गया कि नारीवादी आंदोलनों की आड़ में व्यक्तिगत और सांगठनिक महत्त्वकांक्षाओं को भी पूरा करने का प्रयास किया गया। विभिन्न राजनीतिक पार्टियों की अपनी महिला शाखाएं खोली गईं। 1984 में स्थापित 'इंडियन पीपुल्स फ्रंट' द्वारा पटना में राष्ट्रीय नारीवादी सम्मलेन आयोजित किया गया। 1982 में महाराष्ट्र में राजनीतिक पार्टी शिव सेना द्वारा पार्टी की महिला शाखा की स्थापना की गई। राजस्थान, प. बंगाल में मारवाणी समुदाय के राणी सती संगठन द्वारा सती प्रथा को समुदाय विशेष के गौरव से जोड़ कर देखा गया। राजनीतिक सरपरस्ती में खुले यह महिला संगठन परंपरावादी मान्यताओं के पोषक तथा नारीवाद के विरोधी साबित हुए। इनका उद्देश्य नारीवादियों को पश्चिमी सभ्यता का प्रचारक घोषित करना था।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात अस्सी के दशक में भारत में मुस्लिम नारीवादी आंदोलनों के व्यापक प्रभाव को महसूस किया गया। इसकी पूर्वपीठिका ईरान में चली इस्लामिक क्रांति के माध्यम से समझी जा सकती है। ईरान में चल रही इस्लामिक क्रांति के दौरान तीसरी दुनिया की नारीवादियों ने यह महत्वपूर्ण प्रश्न उठाया कि इस्लाम धर्म तथा स्त्रियों के बीच किस तरह के संबंध हैं? यह प्रश्न इस्लाम धर्म की पितृसत्तात्मक व्याख्या से जुड़ा हुआ है। उन्नीसवीं सदी की शुरुआत में प्रसिद्ध

इस्लामिक चिंतकों सैयद-अद-दीन असदबादी, मोहम्मद अब्दुह, राशिद रेजा तथा कासिम अमीन इत्यादि ने आधुनिक तथा उदारवादी दृष्टि से इस्लाम की व्याख्या का प्रयास किया और इन प्रयासों के फलस्वरूप 1980 से 90 के दशक के बीच कुछ इस्लामिक देशों में इस्लाम की नारीवादी दृष्टि से व्याख्या को स्वीकृति मिली। इस्लाम के प्रति निष्ठा रखने वाली "नारीवादियों ने यह दावा किया कि अब तक इस्लाम को समझने का जो भी प्रयास किया गया है उसके केंद्र में पुरुषों का ही अनुभव रहा है। स्त्रियों के अनुभव को प्रस्थान बिंदु बनाकर इस्लाम की व्याख्या तो हुई ही नहीं है।"[44] स्वीडिश विद्वान जॉन हरजापे ने इस्लामिक देशों में चार प्रकार के नारीवाद- एथिस्ट नारीवाद, धर्मनिरपेक्ष नारीवाद, मुस्लिम नारीवाद तथा इस्लामिक नारीवाद को स्पष्ट किया है। एथिस्ट नारीवाद के अनुसार समाज पर धर्म के बढ़ते प्रभावों पर विराम लगा कर ही स्त्रीवादी आंदोलनों का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है। धर्मनिरपेक्ष नारीवाद धर्म के प्रति उदासीन दृष्टिकोण रखता है और यह मानता है कि मात्र धार्मिक विश्वासों की आलोचना से ही स्त्री आंदोलन अपने लक्ष्यों में सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। मुस्लिम नारीवाद यह मानता है कि अपने मूलरूप में कुरान स्त्री विरोधी नहीं है। इस्लामिक नारीवाद के अनुसार धार्मिक आंदोलनों के माध्यम से ही मुस्लिम स्त्रियों की स्थिति बेहतर की जा सकती है। इस्लामिक नारीवाद मानता है कि ईरान में हुई इस्लामिक क्रांति के फलस्वरूप ही वहाँ की महिलाएं सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक गतिविधियों में अधिक सक्रिय हुई हैं। इस्लामिक देशों में मुस्लिम अधिकार आंदोलनों के संदर्भ में तुर्किस्तान में कमालपाशा तथा अफगानिस्तान में रानी सुरैया ने स्त्रियों को जागरूक करने के साथ ही पर्दा प्रथा के विरोध में भी आवाज उठाई।

भारत में शाह बानो के केस के बाद से मुस्लिम-स्त्री अधिकार आंदोलन की शुरुआत मानी जा सकती है, जिसके माध्यम से मुस्लिम विमेंस बिल की माँग रखी गई थी। इस संबंध में राधा कुमार अपनी पुस्तक 'स्त्री संघर्ष का इतिहास' में लिखती हैं, "आठवें दशक के पूर्वार्द्ध में स्त्रियों के परिवार से एवं परिवार के भीतर संबंधों की पड़ताल के दौरान विवाह, तलाक, संपत्ति एवं मुआवजा इत्यादि

से संबंधित कानूनों की जाँच करने की जरूरत महसूस हुई क्योंकि भारत में धार्मिक तथा सामुदायिक आधार पर इसके अलग-अलग कानून हैं।"[45] यही वह समय था जब "मुस्लिम उदारवादियों, नारीवादियों तथा समाज सुधारकों ने सारे भारत, खासतौर से महाराष्ट्र में, धारा 125 (अभाव के आधार पर गुजारा भत्ता) के समर्थन तथा बहुपत्नी-विरोध एवं मुस्लिम स्त्रियों को गुजारा भत्ता देने और उनके अधिकारों में सुधार की माँग को लेकर अभियान शुरू किया।"[46] अस्सी के दशक में सम्पूर्ण भारत में सांप्रदायिक हिंसा के प्रभाव दिखाई पड़ रहे थे। शाहबानो केस में उच्चतम न्यायालय द्वारा शाहबानो के पक्ष में दिए गए फैसले का इसलिए भी विरोध हुआ क्योंकि "बाबरी मस्जिद मुद्दे तथा शाहबानो केस को एक साथ जोड़ कर इसे भारतीय मुसलमानों पर हिंदू सांप्रदायिकता के जबरदस्त हमले के रूप में देखा गया।"[47]

इसके पश्चात मुंबई के संगठन 'आवाज-ए-निसवां' तथा 'ऑल इंडिया मज़्लिन विमेंस राइट्स नेटवर्क' इत्यादि ने मुस्लिम महिलाओं को कानूनी सहायताओं के संदर्भ में जागृत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। नारीवादी शारजाद माजेब मानती हैं कि इस्लामिक नारीवाद यदि सही मायनों में मुस्लिम महिलाओं का हित चाहता है तो उसे धर्म से ऊपर उठकर सोचना चाहिए।

1.5- स्त्री लेखन:

भारत में व्यापक स्तर पर स्त्रीचेतना का प्रसार नवजागरण युग से माना जाता है परंतु व्यक्तिगत स्तर पर स्त्री लेखन द्वारा विभिन्न महिलाओं ने आदिकालीन तथा मध्यकालीन समाज में भी अपनी वेदनाओं तथा पीड़ा को लेखन के माध्यम से व्यक्त किया था। राजशेखर द्वारा रचित काव्यमीमांसा में कवि गुरु राजशेखर ने महिला कवियों का पक्ष लेते हुए लिखा है, "पुरुषों के समान स्त्रियाँ भी कवि हो सकती हैं। ज्ञान का संस्कार आत्मा से संबंध रखता है उसमें स्त्री या पुरुष का भेद नहीं है।" स्त्रियों द्वारा रचनाकर्म की पुष्टि वैदिक काल में ऋषिकाओं द्वारा रचित मंत्रों से हो जाती है। छठी शताब्दी के पालि भाषा में रचित बौद्ध ग्रन्थ 'थेरीगाथा' में संकलित किए गए बौद्ध भिक्षुणियों के गीतों को भारत ही नहीं वरन संपूर्ण विश्व के सर्वप्रथम स्त्री लेखन में गिना जा सकता है। बौद्ध

धर्मग्रंथ 'सुत्तपिटक' के 'खुद्दक निकाय' के नवें भाग में थेरीगाथाओं का संकलन किया गया है। नश्वर संसार से मुक्ति की प्रार्थना में लिखे गए इन गीतों में संघ के नियम कायदों का भी पर्याप्त ज्ञान मिलता है। हाल द्वारा रचित 'गाथा सप्तशती' में भी महिला कवियों की रचनाओं का संकलन मिलता है। हिन्दी साहित्य इतिहास के आदि काल में नाथ और सिद्ध साहित्य में उल्लिखित चौरासी सिद्धों में कुक्करीपा को नारी सिद्ध बताया गया है। मध्यकालीन भक्ति आंदोलन द्वारा संपूर्ण भारत में विभिन्न महिलाओं ने समाज के विरुद्ध जाकर विद्रोह का स्वर उठाया था। दक्षिण से उठी भक्ति की लहर का स्वर पूरे भारतवर्ष में सुनाई पड़ रहा था। संपूर्ण भारतवर्ष में उठे भक्ति आन्दोलन में वर्ण व्यवस्था के वर्चस्व तथा उत्पीड़न के विरोध का स्वर एक समान था। भक्ति कवियों में महिला कवयित्रियों की संख्या काफी अधिक थी। कश्मीर की भक्ति कवियित्री लालदेद, महाराष्ट्र की बहनाबाई तथा राजस्थान की मीराबाई की रचनाओं में परिवार की संकीर्ण विचारधाराओं, रीति-रिवाजों के प्रति विद्रोह स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। दक्षिण में 'अक्क महादेवी' ने अपना परिवार छोड़ कर वीर शैव कवि 'अलामा' और 'बासवा' के आश्रम में अपना स्थान बनाया। 'अक्क महादेवी', 'सुले संकावा', 'जनाबाई रामी', 'गंगासती', 'रतनबाई', 'मीराबाई', 'मोला', 'बहिनाबाई' तथा 'तारीगोंदा' इत्यादि का नाम मुख्य भक्त कवियित्रियों में से गिना जाता है। दक्षिण भारत के नयनमार भक्तों में पुनीतवती, भेड़यर्भराशि और तिलकावती महिला संतों का उल्लेख किया गया है। आलवार भक्तों में महिला संत आन्डाल का वर्णन मिलता है। प्रसिद्ध साहित्यकार ममता कालिया के अनुसार स्त्री लेखन के साथ ही स्त्री विमर्श भी आरंभ होता है, "स्त्री-लेखन स्त्री के लिए मुक्ति के प्रयासों का एक द्वार है, अनुभूति और अभिव्यक्ति का द्वार। दूसरे शब्दों में स्त्री लेखन के साथ ही स्त्री विमर्श का समय भी आरंभ होता है। पुरुषों द्वारा लिखी अपनी कथा और गाथा स्त्री को अधूरा इतिहास लगती है। इसलिए कभी मीरा के रूप में, कभी अज्ञात हिंदू महिला के रूप में वह अपनी असमान स्थिति पर विचार करती है और पुरुषवादी समय में अपना सत सत्याग्रह दर्ज करती है। "[48] आरंभिक हिंदी कहानियों की लेखिका राजेंद्र बाला घोष उर्फ बंग

महिला ने अपने समय के प्रचलित और लोकप्रिय ऐय्यारी एवं तिलिस्म के उपन्यासों से हटकर यथार्थवादी विषयों को अपनी कहानियों का आधार बनाया। बंग महिला की ही समकालीन यशोदा देवी एतिहासिक कहानियों की रचना करने वाली पहली लेखिका हैं। 'सुबोध बालिका', 'सच्ची माता' 'वीर पत्नी', 'चित्तौड़ की चिता तथा 'भारत का नारी इतिहास' इनकी कुछ महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं। उनका उपन्यास 'वीर पत्नी' संयोगिता और पृथ्वीराज की पूर्वप्रचलित कथा को नई दृष्टि से संयोगिता को केंद्र में रखकर लिखा गया है। पृथ्वीराज की मृत्यु के उपरांत संयोगिता द्वारा गोरी तथा जयचंद की सेनाओं को पराजित करना स्त्री की शक्ति और साहस को स्थापित करने का प्रयास है। इसी काल में सरस्वती गुप्ता का 'राजकुमार', साध्वी सती पति प्राणा अबला का 'सुहासिनी', प्रियंवदा देवी का 'लक्ष्मी' ऐसे उपन्यास हैं जिनमें तदयुगीन धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों के बीच स्त्री अस्मिता के प्रश्न को खड़ा किया गया है। यद्यपि इन उपन्यासों में उपदेशात्मकता का बाहुल्य है फिर भी स्त्री की सत्ता स्वतंत्र रूप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करना इस दौर के स्त्री कथा साहित्य का केन्द्रीय लक्ष्य है। "इन उपन्यासों की खूबी है कि स्त्रियाँ गुणी हैं। बुद्धि कौशल एवं वाक्पटुता इनकी प्रमुख विशेषताएं हैं। स्त्री परिवार में सक्रिय है और परिवार की धुरी हैं। इनमें स्त्री के विद्रोही स्वरूप के बजाय समस्याओं को सुलझाने वाली इमेजों का रूपायन हुआ है। ये ऐसी स्त्रियाँ हैं जो सामाजिक उत्थान की प्रतीक हैं।"[49] हेमंत कुमारी चौधरी ने अपने उपन्यासों 'आदर्श माता' और 'जागरण' में स्त्री शिक्षा, बाल विवाह का विरोध, सामाजिक कुरीतियों से संबंधित प्रश्नों को उठाया है। इस काल की प्रमुख कथा लेखिकाएं ऊषादेवी मित्रा, कमला चौधरी, होमवती देवी, सत्यवती मल्लिक, शिवरानी देवी, महादेवी वर्मा, सुभद्राकुमारी चौहान इत्यादि हैं।

ऊषा देवी मित्रा समाज सुधार तथा राष्ट्रवादी चेतना की कथाकार थीं। ऊषा देवी मित्रा ने अपनी कहानियों में संयुक्त तथा एकल परिवार से जुड़ी समस्याओं, बाल विवाह, वेश्या-समस्याओं, विधवा स्त्री की समस्याओं तथा परित्यकता स्त्री की समस्याओं इत्यादि को उठाया है। 'वचन का

मोल', 'आवाज', तथा 'जीवन की मुस्कान' उनकी महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं। कमला चौधरी आधुनिक स्त्री कथा साहित्य की प्रमुख लेखिका हैं। यथार्थवादी-मनोविश्लेषणवादी कहानियों में वे सिद्धहस्त थीं। 'पीड़ा की खोज' तथा 'देश की चिंता में' उनके प्रमुख उपन्यास तथा 'उन्माद', 'पिकनिक', 'यात्रा' तथा 'बेलपत्र' उनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं। होमवती देवी ने परिवार, राष्ट्र और समाज सुधार के साथ राजनीतिक विषयों पर यथार्थवादी कहानियों की रचना की है। 'निःसर्ग'(1939), 'धरोहर'(1946), 'स्वप्न-भंग'(1948) तथा 'अपना घर'(1950) उनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं। होमवती देवी की कहानियों में आत्मकथा शैली मुख्यतः उभर कर आई हैं। सत्यवती देवी की प्रमुख कृतियाँ 'दो फूल', 'वैशाख की रात', 'दिन रात' तथा 'नारी हृदय की साध' हैं। "सत्यवती जी ने स्त्री के दुखों के रूपायन पर जोर देने की बजाय उसकी सौंदर्यनुभूति और श्रम साधना को बुनियादी रूप में सामने रखा है।"[50] शिवरानी देवी ने अपनी कहानियों में पारिवारिक कुरीतियों, रूढ़ियों, स्त्री के प्रति अन्याय, उत्पीड़न, बहुविवाह, विधवा विवाह, दहेज प्रथा जैसे विषयों को उठाया है। 'कौमुदी' तथा 'नारी हृदय' उनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं।

स्त्री प्रश्नों को प्रमुखता से उठाने के संदर्भ में महादेवी वर्मा की पुस्तक 'शृंखला की कड़ियाँ' का महत्वपूर्ण स्थान है। बीसवीं शती के तीसरे-चौथे दशकों में लिखे निबंधों से संकलित यह पुस्तक स्त्रीविमर्श के शरुआती दस्तावेजीकरण का सार्थक उदाहरण है। महादेवी वर्मा का काव्यकर्म जहां उन्हें छायावाद के एक महत्वपूर्ण स्तम्भ के रूप में स्थापित करता है वहीं उनका गद्यकर्म समाज में स्त्री की स्थिति, सामाजिक समस्याओं इत्यादि पर गहन विमर्श प्रस्तुत करता है। 'शृंखला की कड़ियाँ', के साथ ही महादेवी वर्मा की अन्य गद्य रचनाएं यथा 'साहित्य की आस्था तथा अन्य निबंध', 'मेरे प्रिय संभाषण', 'भारतीय संस्कृति के स्वर' तथा 'क्षणदा' स्त्री साहित्य सैद्धांतिकी को मजबूत आधार प्रदान करती हैं। जगदीश्वर चतुर्वेदी लिखते हैं, "महादेवी वर्मा के आलोचनात्मक गद्य को हिंदी का पहला स्त्रीवादी साहित्यशास्त्र भी कह सकते हैं। महादेवी जी से पहले किसी लेखिका ने इतने व्यापक पैमाने पर साहित्य संबंधी समस्याओं, मूल्यांकन के प्रश्नों पर विस्तार से

विचार नहीं किया। महादेवी जी ने समीक्षा मानदंडों की रचना करते समय 'बुद्धिवृत्ति' एवं 'रागात्मिका वृत्ति' के बीच के अंतस्संबंध को रेखांकित किया। भावक्षेत्र एवं ज्ञानक्षेत्र की एकता के जरिए सत्य के अनुसंधान को साहित्य का लक्ष्य बनाया।"[51] सुभद्रा कुमारी चौहान भी बीसवीं शती के चौथे और पांचवें दशक की प्रभावपूर्ण रचनाकार रही हैं। 'बिखरे मोती', 'उन्मादिनी' तथा 'सीधे-साधे चित्र' कहानी संग्रहों के माध्यम से उन्होंने यथार्थवादी स्त्री कथा परंपरा की नींव डाली। स्वतंत्रता पूर्व के स्त्री लेखन में राष्ट्रप्रेम के साथ ही राजनीतिक परिस्थितियों, समाज में महिलाओं की स्थिति, सामाजिक कुरीतियों का विरोध इत्यादि का भी विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। सुजाता लिखती हैं, "हिन्दी कविता के ये दो पुरखिनें अपनी स्त्री पहचान और चेतना में कई स्वातंत्र्योत्तर कवयित्रियों से आगे ठहरती हैं और अपने लेखन-कर्म की सही आलोचना के लिए लगभग एक शताब्दी का इंतजार करती हैं।"[52]

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात कथा साहित्य का समय संक्रांति काल था जिसमें विभाजन की त्रासदी, जन-साधारण की भावनाएं, सामाजिक अस्थिरता तथा अनिश्चितता इत्यादि महिला कथाकारों के लेखन की विषयवस्तु रही। इसके साथ ही नारी-जागरण और स्त्री शिक्षा के व्यापक प्रचार-प्रसार के फलस्वरूप महिला-कथाकारों की एक सशक्त पीढ़ी का उदय हुआ।

शशिप्रभा शास्त्री, कृष्णा सोबती, दीप्ति खण्डेलवाल, शिवानी, मन्नू भण्डारी, ऊषा प्रियंवदा, राजी सेठ, मृदुला गर्ग, ममता कालिया, चित्रा मुद्गल, मृणाल पाण्डेय तथा प्रभा खेतान इत्यादि के रचना वैविध्य ने स्त्री लेखन को एक नया आयाम दिया। शशिप्रभा शास्त्री की कृतियों में प्रायः जीवन के विविध संदर्भों में स्त्री की पीड़ा और उसके संघर्ष को चित्रित किया गया है। 'अमलतास', 'सीढ़ियाँ', 'कर्करेखा' तथा 'ये छोटे महायुद्ध' उनकी महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं। दीप्ति खण्डेलवाल के उपन्यासों 'प्रिया', कोहरे 'वह तीसरा' तथा 'प्रतिध्वनियाँ' के केंद्र में नारी मन का सूक्ष्म विश्लेषण तथा स्त्री-पुरुष संबंधों की जटिलताओं का चित्रण है। उपरोक्त लेखिकाओं में से कई के साथ ऐसा हुआ कि उन्हें उनका उचित देय नहीं मिला तथा उनके लेखन पर घरेलू तथा व्यावसायिक लेखन का ठप्पा

लगा दिया गया। इस संबंध में ममता कालिया लिखती हैं, "प्रतिभावान लेखिकाओं की एक समूची पीढ़ी इन ठप्पों का शिकार हुई, जैसे शिवानी, शशिप्रभा शास्त्री, मालती जोशी, बसंत प्रभा, दीप्ति खण्डेलवाल आदि। इन्हें हाशिए पर डालने वाले भूल गए कि इन्होंने एक समय में बड़ी अहम भूमिका का निर्वाह किया। विशेषकर शिवानी ने अपने धारावाहिक उपन्यासों से आम पाठकों में हिंदी कथा-कहानी के प्रति रुचि जागृत की। उन्होंने वस्तुतः कहानी को जंगल से जनता तक ढोया।"[53] मन्नू भण्डारी ने उपन्यास 'महाभोज' में वर्तमान व्यवस्था के राजनैतिक षड्यंत्रों को खुलकर उजागर किया है। 'आपका बंटी' भी उनका महत्वपूर्ण उपन्यास है। ऊषा प्रियंवदा ने अपने उपन्यासों 'पचपन खंभे लाल दीवारें', 'रुकोगी नहीं राधिका' तथा 'शेष यात्रा' के माध्यम से आधुनिक स्त्री की मानसिक यंत्रणा का यथार्थपरक चित्रण किया है। राजी सेठ ने उपन्यास 'तत्सम' में आधुनिक स्त्री पात्र बसुधा के माध्यम से नारी- स्वतंत्रता के प्रश्न को केंद्र में रखा है। मृदुला गर्ग स्त्री-विमर्श की विशिष्ट लेखिका हैं। 'चितकोबरा', 'कठगुलाब' तथा 'मिलजुल मन' उनके महत्वपूर्ण उपन्यास हैं। ममता कालिया ने अपनी कृतियों 'बेघर', 'एक पत्नी के नोट्स', 'अँधेरे का ताला' तथा 'दुक्खम-सुक्खम' के माध्यम से पारिवारिक जीवन-परिधि से बाहर व्यापक सामाजिक संदर्भों को केंद्र में रखा है। चित्रा मुद्गल ने उपन्यास 'एक जमीन अपनी' के माध्यम से विज्ञापन जगत में होने वाले नारी-शोषण को चित्रित किया है। इसके अतिरिक्त 'आँवा' उनका महत्वपूर्ण उपन्यास है जो बंबई के मजदूर संघटनों के जीवन-संघर्षों पर आधारित है। प्रभा खेतान ने 'छिन्नमस्ता' तथा 'अपने-अपने चेहरे' के माध्यम से नारी जीवन की त्रासदी को बेहद संवेदनशीलता से चित्रित किया है।

समकालीन रचनाकार मैत्रेयी पुष्पा, गीतांजलि श्री, मधु कांकरिया, अलका सरावगी, अनामिका, महुआ माँजी तथा नीलाक्षी सिंह इत्यादि स्त्रीलेखन की परंपरा को अनवरत समृद्ध कर रही हैं। मैत्रेयी पुष्पा ने 'चाक' तथा 'इदन्नमं' के माध्यम से नारी चेतना को व्यापक सामाजिक परिवेश में चित्रित किया है। गीतांजलि श्री ने 'हमारा शहर उस बरस', 'तिरोहित', 'माई' तथा 'रेत समाधि' उपन्यासों

के माध्यम से कथ्य और शिल्प दोनों स्तरों पर अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है। उपन्यास 'रेत समाधि' के अंग्रेजी अनुवाद 'टॉम्ब ऑफ सैंड' को प्रतिष्ठित बुकर पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है। मधु कांकरिया ने अपने उपन्यासों 'सलाम आखिरी', 'सेज पर संस्कृति', 'सूखते चिनार' के माध्यम से वैविध्यपूर्ण विषयों को चुना है यथा वेश्या जीवन की समस्याओं, सामाजिक-धार्मिक कुरीतियाँ इत्यादि। अलका सरावगी के पाँच उपन्यास 'कलिकथा वाया बाइपास', 'शेष कादम्बरी', 'कोई बात नहीं', 'एक ब्रेक के बाद' तथा 'जानकीदास तेजपाल मैनशन' प्रकाशित हो चुके हैं। अनामिका ने 'दस द्वारे का पिंजरा', 'तिनका तिनके पास' के माध्यम से विभिन्न संदर्भों में स्त्री-प्रश्नों को उठाया है। महुआ माँजी का उपन्यास 'मैं बोरिशइल्ला' बांग्लादेश के मुक्तिसंग्राम की पृष्ठभूमि पर लिखा गया है। 'मरंगगोणा नीलकंठ हुआ' भी उनका चर्चित उपन्यास है जो जादूगोणा में यूरेनियम के खनन पर आधारित है। नीलाक्षी सिंह का उपन्यास 'खेला' नवसाम्राज्यवाद के विस्तार को उद्घाटित करता है। उनके लघु कहानी संग्रह 'परिंदे का इंतज़ार सा कुछ' और 'जिनकी मुट्ठियों में सुराख था' को साहित्यिक आलोचकों द्वारा सराहा गया है।

ममता कालिया लिखती हैं, "बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक तक आते-आते हमें अलका सरावगी, गीतांजलि श्री, और नीलाक्षी सिंह की रचनाओं में परिवर्तन की आहट सुनाई देने लगती है। कथा अथवा वृतांत कहने से ढंग में एक नया तेवर और मिजाज है जो उन्हें सदी के छठे-सातवें दशक से अलग करता है। गीतांजलि श्री का विषय-चयन भिन्न प्रकार का है। 'हमारा शहर उस बरस' में वे सांप्रदायिक दंगों जैसा साहसी विषय उठाती हैं और अपनी तटस्थ शैली में उपन्यास के अंत तक उसका निर्वाह कर लेती हैं।"[54]

स्त्री-लेखन की समृद्ध परंपरा को आगे बढ़ाती हुई इक्कीसवीं सदी के स्त्री रचनाकारों के विषय में ममता कालिया लिखती हैं, "उनकी राहें प्रशस्त हैं, आकाश अनंत है, दिशाएँ अनगिनत हैं। बीसवीं शताब्दी के महिला-लेखन को उसके उत्कर्ष-बिंदु तक ले जाना इक्कीसवीं शताब्दी का स्वप्न व संकल्प होना चाहिए।"[55]

असम में स्त्री लेखन की शुरुआत 16वीं शताब्दी में भक्त कवयित्री पद्मप्रिया आई के लेखन से मानी जाती है। पद्मप्रिया आई ने कृष्ण तथा गुरु शंकरदेव की प्रशंसा में भक्ति गीतों की रचना की। 'मेडुअल इंडियन लिट्रेचर' के अनुसार वे असमिया साहित्य के मध्य काल की एक मात्र महिला कवयित्री हैं। (पृष्ठ-617) पद्मप्रिया के पश्चात स्त्री लेखन में एक लंबा अंतराल दिखाई पड़ता है। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व असम के प्रारम्भिक स्त्री लेखकों में पद्मावती देवी फुकनानी, विष्णुप्रिया देवी, स्वर्णलता बरुआ, जमुनेश्वरी खातोनियार तथा नलिनीबाला देवी का नाम प्रसिद्ध है। समाज सुधारक आनंदराम ढेकीआल फुकन की पुत्री पद्मावती देवी फुकनानी ने 1884 में 'सुधर्मार उपाख्यान' नामक उपन्यास की रचना की। कवयित्री तथा आलोचक होने के साथ ही वे बाल साहित्यकार भी थीं। 'हितोसाधिका' उनके द्वारा रचित प्रसिद्ध बाल साहित्य है। 32 वर्ष की आयु में वे विधवा हो गई थीं। विधवा जीवन के कठिन नीति नियमों की आलोचना पर आधारित उनका आलेख 'बिधोबा' बहिन पत्रिका में प्रकाशित हुआ। स्वर्णलता बरुआ ने 'असम बंधु बिजुली' पत्रिका के लिए आलेख लिखे। उन्होंने 'आहि तिरोता' नामक उपन्यास की रचना की। परंतु इसके पश्चात पारिवारिक दबावों के चलते वह लेखन कार्य में सक्रिय नहीं रह सकीं। धर्मेश्वरी देवी बरुआनी ने 'फूलोर सोराई' (1929), 'प्रानोर परष' (1952), तथा 'अश्रुधान आरू जीवनतारी' (1963) इत्यादि काव्यसंग्रहों की रचना की। उन्हें 1956 में असम साहित्य सभा द्वारा काव्यभारती के नाम से अभिहित किया गया। जमुनेश्वरी खाटोनिया का कविता संग्रह 'अरुण' 1919 में प्रकाशित हुआ। उनकी 25 वर्ष की अल्पायु में मृत्यु हो गई थी। लेखन के साथ ही वे असम में बालिका शिक्षा के लिए प्रयासरत रहीं। नलिनी बाला देवी आरंभिक स्त्री कथाकारों में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। 'कविता संग्रह संध्यार सुर' (1928), 'सोपनार सुर' (1943), 'पारसमोनी' (1954), 'अलकनंदा' (1967) तथा 'जागृति' (1962) उनकी महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं। 1968 में उन्हें 'अलकनंदा' के लिए साहित्य अकेडेमी से सम्मानित किया गया। उनकी आत्मकथा 'एरी अहा दिनबुर' असमिया स्त्री लेखन में मील का पत्थर मानी जाती है। डॉ. शीला बरठाकुर की अध्यक्षता में 1974 में स्थापित 'सोदोऊ

असम लेखिका समारोह समिति' का असमिया स्त्री लेखन के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है। समिति द्वारा असम की लेखिकाओं को लिखने के लिए प्रोत्साहित करने के साथ ही योग्य लेखिकाओं को पुरस्कृत भी किया गया। इसके माध्यम से स्त्री-अभिव्यक्ति को एक सशक्त मंच मिला। समिति द्वारा डॉ. शीला बरठाकुर, स्वर्णा सालकिया और निरुपमा मिश्र के संपादन में सोलहवीं शताब्दी से लेकर समकाल तक असमिया लेखिकाओं की जीवनी प्रकाशित की गई जिसके माध्यम से असमिया लेखिकाओं का कृतित्व और उपलब्धियां प्रकाश में आईं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात असमिया साहित्य को समृद्ध बनाने में असमिया लेखिकाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। निरुपमा बोरगोहाई, नीलिमा दत्त तथा इंदिरा गोस्वामी इस काल की महत्वपूर्ण लेखिकाएं हैं। निरुपमा बोरगोहाई का 'अन्य जीवन' (1986) असमिया साहित्य का पहला स्त्रीवादी उपन्यास है। 'चम्पावती' (1990), 'इपारोर घर सीपारोर घर' (1979), 'हृदय एटा निर्जन द्वीप' (1970) इत्यादि उनके अन्य चर्चित उपन्यास हैं। नीलिमा दत्त यथार्थवादी उपन्यासकार मानी जाती हैं। उपन्यास 'धुमुहार पिसोत' (1992) उपन्यास में छात्र-राजनीति के साथ ही असम की वर्तमान स्थितियों को चित्रित किया है। इन तीनों के अतिरिक्त अरुपा पटगीया कलिता, तिलोत्तमा मिश्र, अरुंधती दत्त, रूपश्री गोस्वामी श्रुतिमाला दूर्वा, बन्दिता फुकन, चित्रलता फुकन, वीणापानि दास बीसवीं सदी के आखिरी दशकों की महत्वपूर्ण लेखिकाएं हैं। इन रचनाकारों में से बन्दिता फुकन साहित्यकार होने के साथ ही असम की पहली महिला मैकेनिकल इंजीनियर भी हैं। इनके तीन लघु उपन्यास 'प्रतीक्षा', 'मादाम ईरि' तथा 'अंतराल' अंतरिक्ष अभियानों पर आधारित हैं। बंदिता फुकन का अंग्रेजी उपन्यास 'जयमती' बहुत चर्चित हुआ जिसका अनुवाद कई भाषाओं में हुआ है। अरुपा पटगीया कलिता का उपन्यास 'अयनान्त' (1994) स्त्री के शोषण तथा उसके संघर्ष पर आधारित है। 'स्वर्णलता' तथा 'लौहित्य सिंधु' तिलोत्तमा मिश्र के चर्चित उपन्यास हैं।

समकालीन असमिया स्त्री कथाकारों में अनुराधा शर्मा पुजारी, रीता चौधरी तथा डॉ. डेका हजारिका का महत्वपूर्ण स्थान है। अनुराधा शर्मा पुजारी पत्रकार, कवयित्री तथा साहित्यकार हैं। उनका

उपन्यास 'हृदोय एक बिज्ञापन' काफी चर्चित हुआ है। रीता चौधरी कवयित्री तथा उपन्यासकार हैं। 'तीर्थभूमि', 'महाजीबनर आधारशिला', 'देउ लॉघुइ' उनके द्वारा रचित महत्वपूर्ण उपन्यास हैं। 'देउ लॉघुइ' के लिए उन्हें 'साहित्य अकादेमी' से पुरस्कृत किया जा चुका है। डॉ. डेका हजारिका उपन्यासकार, कवयित्री, बाल साहित्यकार तथा साहित्यिक आलोचक हैं। असमिया यात्रा साहित्य को आगे बढ़ाने में उनका विशेष योगदान है। 'सीता', 'राज पथोते द्रौपदी' तथा 'ज्वालामुखी' इत्यादि उनकी स्त्री विमर्श को संबोधित करती कविताएं हैं। उपरोक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि असम का स्त्री लेखन समृद्ध तथा वैविध्य पूर्ण है तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात के असमिया स्त्री लेखन के विकास में विभिन्न वर्ग की स्त्रियों का योगदान है। इस संबंध में प्रो. तनुजा मजुमदार लिखती हैं, "आजादी के बाद नारी-शिक्षा के प्रचार-प्रसार के फलस्वरूप सभी क्षेत्रों में उभर कर आने का मौका असम की नारियों को मिला। एक नया वर्ग तैयार हुआ- नौकरी पेशा महिलाओं का। इसके साथ ही आर्थिक रूप से स्वावलंबी बनने वाली स्त्रियों की समस्याएं भी सामने आईं। स्वतंत्रता पूर्व अधिकांश लेखिकाएं प्रगतिशील परिवारों की थीं, इसलिए उन्हें पारिवारिक सहयोग कुछ हद तक मिला था। आजादी के बाद केवल शिक्षित प्रगतिशील वर्ग ही नहीं, सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व असमिया स्त्री-लेखन में हुआ।"[56]

निष्कर्ष-

भारतीय और पाश्चात्य संदर्भ में नारीवादी आंदोलनों पर एक साथ विचार करने पर यह तथ्य सामने आता है कि जहाँ पाश्चात्य संदर्भ में इन आंदोलनों की शुरुआत मताधिकार की माँग से शुरू हुई थी वहीं भारतीय संदर्भ में यह आंदोलन स्वतंत्रता प्राप्ति के आंदोलनों से जुड़े हुए हैं। भारत में संस्कृतियों की विविधता और स्त्रियों के बीच जाति एवं वर्ग आधारित भेद को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि भारत में स्त्रीविमर्श का स्वरूप और मुद्दे पाश्चात्य से भिन्न हैं। स्त्री लेखन के संदर्भ में यदि बात करें तो सिमोन द बउवा से भी पूर्व स्त्री प्रश्नों पर महादेवी वर्मा की पुस्तक 'शृंखला की कड़ियाँ' प्रकाशित हो चुकी थी। रुकाइया सखावत हुसैन की कृति 'सुल्तानाज ड्रीम' 1905 में प्रकाशित हुई

जो विज्ञान पर आधारित नारीवादी यूटोपिया है। अमेरिकी नारीवादी चारलोट गिलमैन की इसी विधा की पुस्तक 'हर लैंड', 'सुल्तानाज ड्रीम' के दस वर्षों के पश्चात प्रकाशित होती है। इन तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि स्त्री लेखन के संदर्भ में भी भारत में स्त्रीविमर्श की स्वतंत्र परंपरा रही है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि स्त्रीविमर्श द्वारा लिंग समानता के प्रयासों की एक लंबी यात्रा तय की जा चुकी है जो अभी भी निरंतर जारी है। आज इक्कीसवीं सदी में भी स्त्रियों के शोषण तथा उत्पीड़न के विरोध में पुरजोर प्रयास किए जा रहे हैं। समाज में अपनी स्थिति, अधिकार तथा समस्याओं को लेकर महिलाएं पहले से अधिक मुखर और स्पष्ट हैं। "आज नारीवादी सोच अपेक्षाकृत अधिक गतिशील, व्यवहारिक और उग्र है। वह 'स्त्री' में एक इंसान की तरह 'अच्छाई' व 'बुराई' के समावेश को पहचानता है।"[57] नाओमी वुल्फ, स्त्रीविमर्श को उत्पीड़ित नारीवाद(विक्टिम फेमेनिज़्म) और शक्ति आधारित नारीवाद(पॉवर फेमेनिज़्म) के रूप में बंटा हुआ पाती हैं। "जब एक औरत अपनी शक्तिहीनता की पहचान के जरिए शक्ति पाने का प्रयास करती है तो वह विक्टिम फेमेनिज़्म की गिरफ्त में होती है। "[58] नाओमी वुल्फ, विक्टिम फेमेनिज़्म को नारीवाद की प्रतिगामी सोच के लिए जिम्मेदार ठहराती हैं। इसके विपरीत शक्ति आधारित नारीवाद(पॉवर फेमेनिज़्म) स्त्री को श्रेष्ठ करने के बजाय उसे मनुष्य मात्र समझता है। नाओमी वुल्फ मानती हैं कि प्रत्येक क्रियाशील महिला जो स्वयं को समाज का एक महत्वपूर्ण अंग समझती है, वह फेमेनिस्ट की श्रेणी में ही आती है। नारीवाद को मात्र स्त्री समुदाय की अस्मिता का आंदोलन न समझ कर वृहद् स्तर पर इसे मनुष्य मात्र का सामूहिक आंदोलन समझना चाहिए जिसका उद्देश्य सामाजिक न्याय की स्थापना करना है। नाओमी, 'विक्टिम फेमेनिज़्म' तथा 'पॉवर फेमेनिज़्म' के साथ ही 'सांस्कृतिक नारीवाद' की अवधारणा को प्रस्तुत करते हुए कहती हैं कि, "सांस्कृतिक नारीवाद ने नारी के प्रकृति के करीब होने की धारणा को लोकप्रिय बनाया। "[59] इक्कीसवीं सदी का नारीवाद, स्त्री की व्यावहारिक छवि का पक्षधर है। स्त्री को देवी या श्रेष्ठरूप घोषित करने की

अपेक्षा स्त्री को सामान्य मनुष्य के रूप में प्रतिष्ठित करने का पक्षधर है। "तात्पर्य यह है कि भविष्य के नारीवाद में स्त्री की आदर्श छवि वही होगी जिसमें अच्छाई व बुराई दोनों का समावेश हो- क्योंकि वही छवि व्यावहारिक है और विश्वसनीय भी। "[60]

संदर्भ सूची-

[1] शास्त्री, पंडित हरिशंकर, (संपा.) (2019), मनुस्मृति, साक्षी प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ- 75

[2] वही, पृष्ठ- 279

[3] वही, पृष्ठ- 167

[4] एंगल्स, फ्रेडरिक, (1960), परिवार, निजी संपत्ति और राज्यों की उत्पत्ति, ई-पुस्तकालय, पृष्ठ- 72

[5] लर्नर, गर्डा (1986), द क्रिएशन ऑफ पैट्रिआर्की, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क, पृष्ठ-31

[6] प्रमिला, के. पी. (2015), स्त्री अध्ययन की बुनियाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-39

[7] मिल, जे. एस. (2016), स्त्रियों की पराधीनता, (हिंदी अनुवाद: प्रगति सक्सेना), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-37

[8] वही , पृष्ठ-57

[9] बौऊवा, सिमोन (2015), इक्स्ट्रैक्ट फ्रॉम द सेकंड सेक्स, विंटेज फेमिनिज़्म, लंदन, पृष्ठ-24

[10] प्रमिला, के. पी. (2015), स्त्री अध्ययन की बुनियाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली**,** पृष्ठ-41

[11] वही , पृष्ठ-45

[12] एंगल्स, फ्रेडरिक, (1960), परिवार, निजी संपत्ति और राज्यों की उत्पत्ति, ई-पुस्तकालय, पृष्ठ- 208

[13] प्रमिला, के. पी. (2015), स्त्री अध्ययन की बुनियाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली**,** पृष्ठ-69

[14] वही, पृष्ठ-69

[15] वही, पृष्ठ-67

[16] यादव, राजेंद्र, खेतान, प्रभा, दुबे,अभय कुमार, (संपा.) (2019), पितृसत्ता के नए रूप: स्त्री और भूमंडलीकरण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 138

[17] मिल, जे. एस. (2016), स्त्रियों की पराधीनता, (हिंदी अनुवाद: प्रगति सक्सेना), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-12

[18] वही, पृष्ठ-16

[19] चक्रवर्ती, उमा, आर्य, साधना (2021), स्त्री अध्ययन: एक परिचय, अनुवाद संपादक- विजय झा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-125

[20] वही, पृष्ठ-126

[21] वही, पृष्ठ-126

[22] वही, पृष्ठ-127

[23] वही, पृष्ठ-128

[24] कुमार, राधा (2019), स्त्री संघर्ष का इतिहास, अनुवाद: रमाशंकर सिंह 'दिव्यदृष्टि', वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ- 26

[25] वही, पृष्ठ- 38

[26] वही, पृष्ठ- 79

[27] वही, पृष्ठ- 91

[28] वही, पृष्ठ- 93

[29] वही, पृष्ठ- 112

[30] वही, पृष्ठ- 122

[31] वही, पृष्ठ- 155

[32] वही, पृष्ठ- 163

[33] वही, पृष्ठ- 48

[34] वही, पृष्ठ- 198

[35] रमाबाई (पं.) (2010), हिंदू स्त्री का जीवन, अनुवाद: शंभू जोशी, संवाद प्रकाशन, मेरठ, पृष्ठ- 25

[36] आलेख 'पंडिता रमाबाई द आईरन लेडी

https://humtak2017.blogspot.com/2018/05/blog-post.html

[37] कुमार, राधा (2019), स्त्री संघर्ष का इतिहास, अनुवाद: रमाशंकर सिंह 'दिव्यदृष्टि', वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ- 206

[38] वही, पृष्ठ- 204

[39] वही, पृष्ठ- 217

[40] वही, पृष्ठ- 220,

[41] वही, पृष्ठ- (230- 231)

[42] वही, पृष्ठ- 245

[43] वही, पृष्ठ- 305

[44] शुक्ला, (प्रो.) आशा, त्रिपाठी, कुसुम (2016), स्त्री अध्ययन: आधारभूत मुद्दे (भाग-1), साहित्य भंडार, इलाहाबाद, पृष्ठ- 94

[45] कुमार, राधा (2019), स्त्री संघर्ष का इतिहास, अनुवाद: रमाशंकर सिंह 'दिव्यदृष्टि', वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ- 316

[46] वही, पृष्ठ- 325

[47] वही, पृष्ठ- 326

[48] कालिया, ममता (संपा.) (2020), महिला लेखन के सौ वर्ष, लोक भारती प्रकाशन, प्रयागराज, भूमिका

[49] चतुर्वेदी, जगदीश्वर (2018), स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, अनामिका पब्लिशर्स, दिल्ली, पृष्ठ-120

[50] वही, पृष्ठ-147

[51] वही, पृष्ठ- 103

[52] सुजाता (2021), आलोचना का स्त्री पक्ष, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ-231

[53] कालिया, ममता (संपा.) (2020), महिला लेखन के सौ वर्ष, लोक भारती प्रकाशन, प्रयागराज, भूमिका

[54] वही, भूमिका

[55] वही, भूमिका

[56] मजुमदार, तनुजा (संपा.) (2011), समकालीन असमिया कहानियाँ स्त्री कलम से, हिंदी अनुवाद: डॉ. संध्या कुमारी सिंह,गाँधी सेंटर फॉर नॉर्थ-ईस्टर्न लैंगवेजेस, बंगाली, संथाली एण्ड हिंदी, प्रेसिडेंसी विश्वविद्यालय, कोलकाता, पृष्ठ-14

[57] यादव, राजेंद्र, खेतान, प्रभा, दुबे,अभय कुमार, (संपा.) (2019), पितृसत्ता के नए रूप: स्त्री और भूमंडलीकरण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ- 110

[58] वही, पृ. सं.- 110

[59] वही, पृ. सं.- 114

[60] वही, पृ. सं- 118